श्री खरतरगच्छाधिपति श्री जिनदत्त चन्द्र कुशलचन्द्र
गुरुभ्योनमः
ॐ

श्री बीसस्थानक तप कथाऐं

उपदेशिका

परम पूज्य खरतरगच्छीय गणाधीश्वर जी स्व. श्री
मान १००८ सुखसागरजी म. सा. के समुदाय
निवासिनी गुरुवर्या श्रीमती पुण्य श्री जी
म. सा० की अन्तेवासिनी श्रीमती सुवर्ण
श्रीजी म.सा. की विदुषीशिष्या, शासन
प्रभाविका,, भारत कोकिला, प्रवर्तनी
जी श्री विचक्षण श्री जी
म. सा,

सम्पादक

मिलापचंद गोलछा
नवा माधुपुरा अहमदाबाद

प्रकाशकः-श्री पुण्य सुवर्ण ज्ञानपीठ, शीवजीराम भवन
जयपुर (राज.)

वीर सं २५०५ सर्वहक्क स्वाधीन विक्रम सं २०३५

प्रथमावृति १५००   मुल्य-सदुपयोग

श्री खरतरगच्छाधिपति श्री जिनदत्त चन्द्र कुशलचन्द्र
गुरुभ्योनमः

ॐ

श्री बीसस्थानक तप कथाऐं

उपदेशिका

परम पूज्य खरतरगच्छीय गणाधीश्वर जी स्व. श्री
मान १००८ सुखसागरजी म. सा. के समुदाय
निवासिनी गुरुवर्या श्रीमती पुण्य श्री जी
म. सा० की अन्तेवासिनी श्रीमती सुवर्ण
श्रीजी म.सा. की विदुषीशिष्या, शासन
प्रभाविका,, भारत कोकिला, प्रवर्तनी
जी श्री विचक्षण श्री जी
म. सा,

सम्पादक

मिलापचंद गोलछा

नवा माधुपुरा अहमदाबाद

प्रकाशकः-श्री पुण्य सुवर्ण ज्ञानपीठ, शोवजीराम भवन
जयपुर (राज.)

वीर सं. २५०५ सर्वहक्क स्वाधीन विक्रम सं २०३५
प्रथमावृत्ति १५००   मुल्य-सदुपयोग



स्व० पुज्य साध्वीजी श्रीसूर्यप्रभाश्रीजी महाराज

स्वर्गीया साध्वीजी श्रीसूर्यप्रभा श्रीजी म०सा० की संक्षिप्त जीवनी

लेखिका हेमलता जैन

सर्जन और विसर्जन संसार का अटूट नियम है। इस वसुन्धरा पर नित्य अनेक प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं। यह अनादीय चक्र अविरल गति से चलता है। इसकी अनवरत गति से कोई नहीं बच पाया है-भले ही वह तीर्थंकर भगवत हो चक्रवर्ती हो अथवा कोई सामान्य व्यक्ति। इस विधि के विधान ने ही जैन शासन रूपी उपवनमें खिली एक सुन्दर कली को अल्प समय में ही मुरझा दिया जो कली अभीफूत्र बन कर अपनी सौरभ से वातावरण को मदमय सुगन्धित नहीं बना पाई थी कि काल के क्रूर चक्र के हाथ कुचल दी गई। वह कली थी साध्वीजी श्रीसूर्य प्रभा श्रीजी म सा जिन्होने अभी केवल चार वर्ष का ही सयमी जीवन पूर्ण किया था। जिस सूर्य की प्रात कालीन अरूणिमा सभी व्यक्तियो के आखो में एक स्वप्न जगारहीथी,अज्ञानान्धकार को पूर्णरूप से हटाकर प्रखर प्रकाश से ससार को आलोकित करने की प्रतीक्षा करा रही थी। लेकिन वह सूर्य अपनी दिव्यप्रभा से जग को प्रकाशित भी नहीं कर पाया था कि असमय ही अस्त हो गया। केवल १८ (अट्ठारह) वर्षकी ही तो वय थी—आप श्री की।

आपका जन्म धर्मभूमि गुर्जर देशान्तर्गत बड़ौदा शहर निकट वर्तीपुण्य पावन धरा पादरा में स १९९५ में हुआ था। आप के

(1) 1.46μm (2) 4.05μm

पिता रमणभाई धर्म में रमण करने वाले और आपकी माता गजरा बेन धर्म संस्कारो से पूर्ण थी। आपका जन्म का नाम सुमित्रा रखा गया। आपके परिवार में सभी का जीवन धर्म-रंग से रंगित था। उन्हीं संस्कारो में पलती हुई आप भी मंदिर व्याख्यान श्रवण आदि कार्यों को प्राणो से भी अधिक प्रिय मानती थी।

सुगठित देह के साथ लावण्ययुक्त सुन्दर चेहरा, कमल से विकसित नेत्र, तीक्ष्ण नासिका—ऐसे स्निग्ध रूप के साथ—मधुर कोकिल कंठ की प्राप्ति मणि—कांचन संयोग को सिद्ध कर रही थी। जब आप व्याख्यान इत्यादि में स्तवन गहुँली आदि वाद्यो के साथ गाती थी तो श्रोतागण आनन्द मे झूम उठते थे। तन्मय होकर उस स्वरलहरो की मदमाती मस्ती में मस्त हो जाते थे। गाने में आपकी संग आपकी सखी कु. मधुकान्ता चिमन लाल दिया करती थीं। आप दोनो के भावविभोर कर देने वाले गायनो ने सभी को मंत्रमुग्ध कर रखा था।

साधु-साध्वियां का पदार्पण प्रायः होता रहता है। व्याख्यान श्रवण आदि से मनोभूमि उर्वरा बन चुकी थी। आपकी भावी गुरूवर्या श्रीभारत कोकिला पू. विचक्षण श्री जी म. सा. का अपने साध्वी मण्डल के साथ पादरा में शुभागमन हुआ। व्याख्यान भारती विचक्षण श्री जी म. सा. के व्याख्यान में जनता उमड़-घुमड़ कर आने लगी—मानो प्यासे पक्षी को अमृत सम मीठे जल की प्राप्ति हो गई हो। आपकी अमृतोपदेश की धारा से वह जन—गण प्लावित हो उठा और उस धारा से टकराती शीतल

गन्धित कीर्ति रूपी हवा चारो दिशाओ में उड़ती हुई आपका यशोगान करने लगी। इस सुन्दर अवसर में बुद्धिमती बालिका सुमित्रा के उर्वर हृदय में वैराग्य का बीज अंकुरित हो गया और सारे वर्षाकाल में वह योग्य सिञ्चन पाकर पल्लवित पुष्पित हो गया। फलतः चातुर्मास पूर्ण होते ही सं. २०११ मौन ग्यारस के कल्याणक दिन में सुमित्रा एवं मधुकान्ता ने पुनीत प्रव्रज्या ग्रहण की। दोनों के नाम क्रमशः सूर्यप्रभा श्री जी म. सा. एवं मनोहर श्री जी म. सा. दिए गए।

दीक्षा के कुछ समय उपरान्त परम पूज्या गुरुवर्या श्री जी के साथ विहार कर बड़ोदा खंभात होती हुई पालीताणा पहुची। वहाँ नवाणु, यात्रा व चातुर्मास भी किया। चातुर्मासोपरान्त विहार करके युगप्रधान बड़े दादा श्री जिनदत सूरि जी के अष्टम शताब्दी महोत्सव जो वि. स. २०१३ वैशाख शुक्ला में होने वाला था उसमें सम्मिलित होने के लिए अजमेर पधारी। वहीं पर स्वर्गीय आचार्य वीरपुत्र श्रीमान आनन्दसागर जी म. सा. के पुनीत कर कमलों से आप सर्व की बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई। आपका अध्ययन सुचारू रूप से चलता रहा। संस्कृत, हिन्दी का आपने अच्छा अभ्यास कर लिया यह चौमासा आपका पू० तिलक श्री जी म. सा. आदि के साथ अजमेर में ही हुआ। इसके पश्चात स० २०१४ का चातुर्मास भी पूज्य गरूवर्याश्री विचक्षण श्री जी म. सा. के चरण सान्निध्य में अजमेर में ही हुआ। स० २०१५ के चातुर्मास में गुरूवर्या श्री ने आप श्री को पू० विज्ञान श्री जी म. सा० पू० तिलक श्री जी म. सा. आदि ८ (आठ) साध्वियों के साथ

बीकानेर भेज दिया। चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। चातुर्मास पश्चात विहार करने का विचार था किन्तु पौषवदी में चारित्रनायिका सूर्यप्रभा श्री जी म. सा. का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। उन्हें टायफाइड हो गया—उचित उपचार होने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। हालत दिन प्रतिदिन बिगड़ती गई, अन्त में सन्निपात हो गया और हमारी इस उदीयमान तारिका को असमय में ही काल रूपी तमस ने ग्रसित कर लिया। अन्तिम समय में आपकी भावना अर्हन्त में लीन रही—बराबर सावधानता बनी रही। अपना अन्तिम समय निकट जानकर आपने स्वयं ही अनशन कराने की समीपस्थ रहे हुए पू. साध्वी जी श्री लाल श्री जी म. सा. तिलक श्री जी म. सा. विजयेन्द्र श्री जी म. सा., चन्द्रप्रभा श्री जी म. सा. को प्रार्थना की। उनकी भावना एवं अवस्था देखकर अनशन व भव चरिम करा दिया गया। रात्रि १ बजे आपके प्राण पखेरू इस शरीर—पिंजर को छोड़कर स्वर्ग प्रयाण कर गए। उस समय आप के सांसारिक भ्राता श्रीमनुभाई एवं मातु श्री गजरा बेन भी आगये थे। बीकानेर संघ ने समारोह पूर्वक आपका अग्नि संस्कार किया।

उस दिव्य आत्मा ने अल्पसमय में ही अपने मानव जीवन को प्रभु—भक्ति, त्याग, तप, संयम द्वारा सार्थक बनाकर हम सब के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर दिया। उनकी पुनीत और मधुर स्मृतियाँ आज भी हम सब को भाव—विह्वल बना देती हैं। उस पवित्र पुण्यात्मा को कोटिशः वन्दन।



श्री बीस स्थानक तप की बीस कथाएँ

पहली कथा

श्री देवपाल

जो पहले अरिहंत पद की आराधना से तीर्थंकर हुवे

इस भरत क्षेत्र में लक्ष्मी से पूर्ण अचलपुर नाम का एक नगर था। वहाँ के लोग धनाढ्य, सुखी और दानीथे। वहां के राजा का का नाम सिंहरथ था। जिसका यश सब जगह फैल रहा था। वह न्यायपूर्वक राज्य करता था और उन्होंने अपने शत्रुओं को वश में किया था। कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता था। वह हाथी, घोड़े रथ, पैदल आदि सब तरह की लक्ष्मी का स्वामी था। उसके सर्व गुण सम्पन्न कनकमाला और शीलवती नामकी दो रानियां थीं। राजा के सुलक्षणा एवम् अनुपम सौंदर्यशाली गुणवती मनोरमा नाम की एक पुत्री थी।

उसी नगर में साक्षात् कुबेर के समान अपार धनशाली जिनदत्त नाम का सेठ रहता था। राजा भी उसका बड़ा सम्मान करता था। वह सेठ सम्यग् दृष्टियों में श्रेष्ठ, दुखी और अनाथों को आश्रय देने वाला, परोपकारी, दयालु आदि गुणों से विभूषित

था। उसके घर में (क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुआ,) सर्व जीवों पर दया करने वाला, जैन धर्म को मानने वाला देवपाल नाम का नौकर था। वह सद्गुरु के सहवास से वीतराग धर्म के रहस्य को जानने वाला था। अहा! सद्गुरु की कृपा से क्या नहीं मिलता? सद्गुरु मिथ्यात्व का नाश कर अनेक भवों में उपार्जन किए ाष्ट कर्मों का नाश करने वाले सम्यगदर्शन ज्ञान और चारित्र रूपी तीन रत्नों को प्राप्त कर भव भ्रमण रूपी चक्र से मुक्त करते हैं। ऐसे सद्गुरु की सगति के गुणों का यथार्थ वर्णन कौन कर सकता है?

एक दिन आकाश में मेघ गर्जना कर रहे थे, जगह-जगह नदियों में पानी बड़े वेग से बह रहा था, ऐसे समय में देवपाल कम्बल ओढ़े, हाथ में लाठी लिए जिनदत्त सेठ की गायों को लेकर एक नदी के किनारे चरा रहा था। इतने में जल के तेज बहाव के कारण नदी तट का एक तरफ का हिस्सा कटकर गिर गया और उसमें से युगादिदेव आदिश्वर भगवान की मनोहर मूर्ति निकली। एकाएक देवपाल की दृष्टि उस मूर्ति को देखकर चिन्ता-मणि अथवा कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ हो इसप्रकार हृदय में प्रसन्नता होता हुआ सोचने लगा कि अहो! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि तीन लोक के स्वामी के मुझे दर्शन हुए। मेरे सब अशुभ कर्मो का नाश होकर मेरा पुण्य उदय हुआ है। अब इस प्रभु की मूर्ति को पवित्र स्थान देखकर स्थापित करूं। इस प्रकार विचार कर पवित्र जगह देख नदी के किनारे पर एक पर्ण कुटि बनाई

और उसमें युगादिदेव की प्रतिमा स्थापित कर यह नियम लिया कि 'जीवन पर्यन्त जब तक यहां प्रभु के दर्शन नहीं करूंगा तब तक भोजन नहीं करूंगा।' ऐसा नियम लेकर निरन्तर उस प्रतिमा की चंदन से सेवा, पूजा, भक्ति करने लगा।

इस प्रकार अनन्य भक्ति से निश्चल अभिग्रह युक्त प्रभु के दर्शन और सेवा करते हुए कुछ दिन व्यतीत हुए। इतने में एक दिन आकाश सर्वत्र काले मेघों से आच्छादित हो गया, चारों दिशाओं में घनघोर घटा छा गई। बिजली की कड़क से सम्पूर्ण आकाश मण्डल घोर गर्जना से गूंजने लगा और मूसलाधार वर्षा होने लगी। सर्वत्र जल ही जल दृष्टि-गोचर हो रहा था। ऐसे समय में देवपाल युगादिदेव की सेवा करने नहीं जा सका जिससे बिना भोजन के ही रहना पड़ा। इस प्रकार लगातार सात दिन तक वर्षा होती रही इसलिए उसे भगवान के दर्शन न होने से सात दिन उपवास करने पड़े। आठवे दिन वर्षा रुकने पर देवपाल बड़े हर्ष व उल्लास के साथ भगवान की सेवा पूजा करने गया। वहाँ जाकर अत्यन्त भक्ति पूर्वक सेवा करके इस प्रकार स्तुति करने लगा।

'हे प्रभु! हे त्रैलोक्य नाथ! हे करुणा सागर! मेरा अपराध क्षमा करें क्योंकि सात दिन तक मुझ मंदभागी ने आपकी सेवा भक्ति नहीं की। हे त्रैलोक्य तारण! जिस प्रकार वन में मालती का पुष्प बेकार है उसी प्रकार मेरे ये सात दिन आपकी सेवा भक्ति के बिना व्यर्थ गये हैं। हे त्रैलोक्य वत्सल! आज आपके पवित्र

दर्शन करके कृतार्थ हुआ हूँ। हे विश्वेश ! विशेष क्या कहूँ ! आपके दर्शन बिना मुझे कोई भी बात अच्छी नहीं लगती, न कोई जगह आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये हे करुणा निधि ! मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि क्लिष्ट कर्मों को नाश करने वाले आपके दर्शन का मुझको निरन्तर लाभ मिलता रहे"

इस प्रकार देवपाल की अनन्य भक्ति देख युगादि प्रभु की शासन देवी चक्रेश्वरी प्रत्यक्ष प्रकट हो हर्षित होकर कहने लगी। 'हे देवपाल ! मैं भगवान की शासनदेवी चक्रेश्वरी हूँ। तेरी भक्ति से तेरे पर प्रसन्न हुई हुं इसलिए तू इच्छित वर माँग। इस लोक का कोई भी सुख माँग ले"।

देवपाल ने कहा 'हे देवी ! त्रैलोक्य क स्वामी पर मेरो अनुपम और अखण्ड भक्ति रहे, इसके अतिरिक्त किसी वस्तु की मुझे इच्छा नहीं है।

देवी—हे पुण्यशाली ! यह तो है हो, परन्तु इसके सिवाय और कोई वर माँग। देवता का दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।

देवपाल—शासन प्रभाविका ! भगवान की भक्ति के आगे तीन लोक के साम्राज्य की भी कोई गिनती नहीं होती। ऐसा कौन मूर्ख है जो हाथी को बेचकर गदहा खरीदेगा। हे देवी ! भगवान् की अनन्य भक्ति के सिवाय मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है।

देवी भाग्यशाली ! तेरी ऐसी निःस्पृह भावना से प्रसन्न होकर यह वरदान देती हूँ कि थोड़े ही दिनों में तू इसी नगर के राज्य का स्वामी होगा। यह वरदान देकर देवी अन्तर्धान हो गई।

इसके बाद देवपाल ने भावपूर्वक उत्साह से शुद्ध अन्तःकरण से भगवान की भक्ति स्तवन किया तथा भगवान का ध्यान करता हुआ घर गया। जिनदत्त सेठ ने बहुत आदर पूर्वक क्षीर से पारणा कराया। उस समय नगर के बाहर उद्यान में दमसार मुनि ने निर्मल शुक्ल ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का क्षय कर लोकालोक को एक ही समय में प्रकाश करने वाला निर्मल केवलज्ञान महोत्सव किया। जिस प्रकार मन्दराचल पर्वत पर सूर्य शोभायमान होता है उसी प्रकार सुवर्ण कमल पर आरुढ़ होकर केवली भगवान शोभित हुए। नगर में नगर निवासियों को सूचना मिलने पर सब केवली भगवान का वन्दना को चले। सिंहरथ राजा भी परिवार सहित केवली की पर्षदा में आकर पांच अभिगम पूर्वक वन्दना व स्तुति कर उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय दमसार केवली भगवान संसार रूप ताप से संतप्त हुए भव्यजनों को अमृत की वृष्टि के समान धर्म देशना देने लगे।

हे भव्य प्राणियों! यह संसार दुखमय दुःख का भण्डार और असार है प्राणियों का शरीर जल के बुदबुदे के समान क्षण में उत्पन्न होकर विलय होता है। जो अतिशय श्रम से नाना प्रकार की सम्पदा को प्राप्त कर दूसरों पर हुक्म चलाता है वह भी जब निर्दयी यमराज के फन्दे में पड़ता है तब पूर्ण पश्चाताप करते हुए हाथ फैलाकर मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय महान् परिश्रम से प्राप्त की हुई सम्पदा को कोई अन्य ही भोगता है और उसे प्राप्त करने में किए गये क्लिष्ट कर्मों को तो उसे ही भोगने पड़ते हैं।

ससार के सब सम्बधियों का स्नेह भी केवल झुठा, प्रपंचमय एवम् स्वार्थमय है। यदि माता का स्नेह सत्य है ऐसा मान लिया जाय तो वह भी असत्य है, क्योंकि देखो चुल्लणा रानी ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को अपने सुख में बाधारूप समझकर उसे मारने के लिये क्या नहीं किया। यदि पिता का स्नेह सत्य है ऐसा मान लिया जाय तो वह भी प्रपचमात्र है, क्योंकि राज्यलक्ष्मी के लोभी कनककेतु ने अपने सब पुत्रों का अगोपांग का छेदन कर उन्हें राज्य से अयोग्य बनाने का प्रयत्न किया। यदि पुत्र का स्नेह सत्य है ऐसा मान लें तो यह भी भ्रम ही है, क्योंकि कोणिक ने अपने पिता श्रेणिक को काठ के पींजरे में डालकर उसे क्या क्या दु ख नहीं दिये ? इस प्रकार ससार के सब रिश्तेदारों का स्नेह उपाधि रूप और दु ख का कारण समझकर हे भव्य जीवो ! आप धर्म मे अपने चित्त को स्थिर करो। इस दृष्टान्त के समान दुर्लभ मनुष्यजन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घआयु और जिन भाषित धर्म को पाकर प्रमाद से उसे क्यो व्यर्थ खोते हो ? मनुष्यों की आधी आयु नींद में ही चली जाती है, बाकी में से आधी बचपन और युवावस्था में व्यतीत हो जाती हे, अब बाकी रही हुई आयु बुढ़ापे में पूरी हो जाती है। इस प्रकार महान् पुण्य योग से प्राप्त हुए इस मनुष्य भव को लोग मोहवश होकर व्यर्थ में ही खो देते हैं। मृत्यु हो जाने पर जब नरक के दु सह दुखों की वेदना सहन करनी पड़ती है तब यह जीव अत्यन्त पश्चाताप कर

रुदन करता है और अन्त में अनन्त संसार चक्र में भ्रमण करता है। इसलिये हे भव्य प्राणियों! संसार के इस स्वरूप को समझ कर मोक्ष लक्ष्मी को देनेवाले धर्म की तरफ चित्त को लगाओ।"

केवली भगवान की धर्म देशना सुन कर सिंहरथ राजा को ज्ञान हुआ और उसने पूछा कि हे भगवन्! अब मेरी आयु कितनी बाकी है?

केवली—हे राजा! तेरा आयुष्य अब सिर्फ तीन दिन का और है।

केवली भगवान के ऐसे वचन सुनकर राजा चमका और अपने मन में पश्चाताप करने लगा। अरे मैंने राज्य लक्ष्मी और ऐश्वर्य में उन्मत्त हो, [1]पचेन्द्रिय के विषय और कषाय में लीन होकर जरा भी सुकृत नहीं किया, तपस्या भी नहीं की और सारी आयु ऐसे ही व्यतीत करदी। अब क्या हो सकता है? आग लगने के बाद कुआँ खोदने से क्या फायदा? इस प्रकार राजा पश्चाताप करने लगा। तब केवली भगवान ने फरमाया हे नरेश! सिर्फ पश्चाताप करने से क्या होगा? अभी भी तीन दिन शेष हैं कल्याण के लिये वही काफी है। करोड़ों वर्षों तक तपस्या करके जो पुन्य उपार्जन किया जाता है उतना पुण्य एक अन्तर्मुहुर्त में [2]पांच महाव्रत धारी मुनि को होता है।

---

१. पांच इंद्रिय—स्पर्शन, रसना, घ्राण,, चक्षु और श्रोत्र।

२. पांच महाव्रत-प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, और परिग्रह विरमण।

इसलिये अभी सम्यक्त्वयुक्त श्रावक के बारह [1]व्रत अंगीकार कर। सम्यक्त्वयुक्त किया हुआ थोड़ा तप भी [2]आठ कर्मों को निर्जरा करने वाला होता है।"

इस प्रकार केवली भगवान् की वाणी सुनकर संवेगपूर्ण हृदय से बारहव्रत अंगीकार कर राजा राजमहल में आकर विचारने लगा कि 'अब आयुष्य कम होने से यह राज्य और पुत्री मनोरमा किसके अर्पण करूं?' इतना विचार आते ही राज्याधिष्ठायिका देवी प्रगट होकर कहने लगी हे राजन्! पंच दिव्य प्रकट कर और वह पंच दिव्य जिसको पुष्पमाला पहनावे उसे तेरा राज्य और पुत्री मनोरमा अर्पण कर स्वयं आत्म हित साधन कर'। ऐसा कह वह देवी अन्तर्धान हो गई। पीछे राजा और मंत्री आदि राज्यमंडल ने मिलकर पंचदिव्य प्रगट किए और नगर में घुमाये। जिन पूजा के प्रभाव से पंचदिव्य ने देवपाल के गले में पुष्पमाला पहनाई। राजा ने महोत्सव पूर्वक का पाणिग्रहण संस्कार देवपाल के साथ कर दिया, सारा राज्य भी उसे भेंट कर दिया और स्वयं ने

---

१. बारह व्रत स्थूल प्राणातिपात विरमण, स्थूल मृषावाद विरमण, स्थूल अदत्तादान विरमण, स्थूल मैथुन विरमण, परिग्रहपरिमाण, दिक्परिमाण भोगोपभोग परिमाण, अनर्थदण्ड विरमण, सामायिक देशावगाशिक पौषधोपवास और अतिथि संविभाग।

२. आठ कर्म ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय।

केवली भगवान के पास जाकर चारित्रग्रहण किया। दो दिन तक निरतिचार संयम पाल कर सौधर्म स्वर्ग में देवता हुआ।

अरे ! दो दिवस मात्र चारित्र पालने से सिंहरथ राजा अनुपम देवता के सुख भोगने वाला हुआ। इसलिये जो दीर्घकाल पर्यन्त सम्यक प्रकार से निरविचार संयम पालन करता है उसे क्या प्राप्त नहीं होता है ? जो एक दिन भी मोह रहित, समभाव पूर्वक निरतिचार चारित्र का पालन करता है उसे कदाचित् मोक्ष न भी मिले, परन्तु देवलोक का सुख तो अवश्य मिलता है। इसीलिये कहा है कि :—

प्रतिहन्तिक्षणार्द्धेन, साम्यमालंब्य कर्म तत् ।
यन्न हन्यान्नरस्तीव्रतपसा जन्म कोटिभिः ॥१॥

अर्थः—'जिन कर्मों को मनुष्य करोड़ों जन्म पर्यन्त किये हुए तप से भी दूर नहीं कर सकता, उन कर्मों को सिर्फ मन के साम्य अवलम्बन से आधे क्षण में दूर कर सकता है।'

अब देवपाल राजा हो गया परन्तु मंत्री वगैरह कोई उसकी आज्ञा को नहीं मानते थे। इससे देवपाल विचार करने लगा कि "यदि मंत्री आदि नये बनाता हूँ तो बिना कारण ये सब शत्रु बन जायगे। अब क्या करना चाहिये ? सेठ जिनदत्त को बुलाकर उनकी सलाह लेना चाहिये। ऐसा विचार कर सेठ को बुलाया परन्तु सेठ भी अभिमान वश नहीं आया। तब देवपाल चितायुक्त होकर सरिता तट पर जहां युगादिदेव पर्ण कुटी में थे

वहाँ जाकर भाव पूर्वक दर्शन कर स्तुति करने लगा–'हे प्रभु ! हे जगन्नाथ ! हे कृपानिधान ! आप जयवन्ता हो ! हे दीनेश ! आपने मुझे राज्य दिया परन्तु विना घी के भोजन व्यर्थ है उसी प्रकार ऐश्वर्य और प्रताप विना राज्य भोगना भी वेकार है ! इसलिये हे प्रभु ! जब आपने राज्य दिया है तो उसके साथ २ दसों दिशाओं में मेरी कीर्ति और प्रताप फैले और सब मेरी आज्ञानुसार काम करे ऐसा उपाय करें नहीं तो जिस प्रकार होली का राजा केवल हँसी के लिये होता है उसी तरह मैं भी प्रताप रहित वैसा ही गिना जाऊँगा !'

इस प्रकार देवपाल की स्तुति सुनकर चक्रेश्वरी प्रगट हुई और कहने लगी–हे राजा तू जरा भी दिल में खेद मत कर और मैं कहूँ वैसा कर जिससे सब तेरे आधीन हो जायेंगे। एक मिट्टी का हाथी बनाकर उस पर तू सवारी करना और देव प्रभाव से वह हाथी जीवित होकर सब जगह फिरेगा। यह देखकर सब लोग तेरी आज्ञा मानेंगे तथा अभिमान छोड़कर नमस्कार करेंगे। परन्तु राज्य लक्ष्मी से उन्मत्त होकर कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाले भगवान की सेवा मत छोड़ना। यह कहकर देवी अदृश्य हो गई।

देवपाल ने पुनः भगवान की हर्ष पूर्वक स्तुति कर राज महलमें आकर कुम्हार को बुलाकर सुन्दर आकृति वाला ऐरावत हाथी के समान मिट्टी का हाथी तैयार कराया। उस पर अम्बा-

बाड़ी लगाकर आरूढ़ होते ही देव प्रभाव से मिट्टी का हाथी मेघ समान गर्जना करता हुआ शहर के बाहर भगवान के दर्शन करने चला। यह आश्चर्य जनक घटना देखकर सब मन में डरने लगे और सोचने लगे कि वास्तव में इसका कोई देव सहायक है। यह सामान्य आदमी का कार्य नहीं है, इसे देव सहायता करता है इसी से यह मन इच्छित कार्य कर सकता है। यह जिस पर प्रसन्न हो उसे ऐश्वर्यवान बना सकता है और रुष्ट हो जाय तो सर्व लक्ष्मी लूट कर हाथ पैरों में हथकड़ी डालकर कारागृह में डाल सकता है। इसलिये अपने अभ्युदय के लिये इसे प्रसन्न रखना चाहिये। यह विचार कर सर्व सामन्तगण और पुरजन देव-पाल राजा के पास आकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे–हे कृपानाथ। हे पृथ्वीपति। हमारे सब अपराध क्षमा करना। हम अज्ञानियों ने आपकी अवज्ञा की है वह हमारी वास्तव में मूर्खता है। हे कृपालु। विशेष क्या कहें? आपतो समुद्र समान गम्भीर हैं इसलिए हम अज्ञानियों पर प्रसन्न होकर हमारे अपराध क्षमा करो। हम सब आपकी आज्ञानुसार कार्य करने को तैयार हैं। इस प्रकार सबको अपने आधीन हुए जानकर देवपाल ने अपने परमोपकारी जिनदत्त सेठ को आदर पूर्वक बुलाकर बहुत सम्मान पूर्वक प्रधान मंत्री की पदवी प्रदान की। अहो। जगत में वही पुरुष धन्य है जो अपने पर किये उपकार को नहीं भुलता। दूसरे सब सामन्तों को भी अपने २ पद पर कायम रखा। इस प्रकार राज्य का सारा काम मंत्री के सुपुर्द कर निश्चित

होकर राजसुख भोगने लगा और हर्ष पूर्वक भगवान की भक्ति में दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर नगर के उद्यान में, अनेक ग्राम, नगर में बिहार करते हुए बहुत मुनियो सहित केवली भगवान दमसार मुनि पधारे। सूचना मिलते ही राजा भी मंत्री, सामन्त और रानी सहित अत्यन्त हर्ष पूर्वक वन्दना करने गया। तीन प्रदक्षिणा देकर, पाँच अभिगम पूर्वक गुरु के सन्मुख उचित आसन पर बैठ गया। सुवर्ण कमल पर विराजमान होकर गुरु महाराज भवभ्रमण रूपी व्याधि से पीड़ित जीवो को अमृत की धारा के समान कल्याणकारी देशना देने लगे।

"हे भव्य जीवो! जैसे समुद्र जल का आधार है वैसे तीनों लोक के जन्तुओं के कल्याण के लिये भी जिनेश्वर प्ररुपित धर्म ही अधार रूप है। इससे चिंतामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष वश में होते हैं और मोक्ष सुख भी सुलभ होते है। इसलिए ऐसे धर्म का आदर करो। वह धर्म दो प्रकार का कहा है। एक श्रमण धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। श्रावक धर्म सम्यक्त्व मूल बारह व्रत सहित है। श्री जिनेश्वर की उल्लासपूवक भक्ति करने से सम्यक्त्व निर्मल होता है। जिनपूजा क द्रव्य और भाव ये दो भेद हैं। श्री जिनेश्वर देव की आज्ञा का पालन करना—अष्ट प्रकारी आदि पूजा करना यह प्रथम द्रव्य पूजा है और उनकी स्तुति स्तवनादि गुणगान करना भाव पूजा है। द्रव्य पूजा से उत्कृष्ट देवलोक के सुख प्राप्त होते हैं और भाव पूजा से अनन्त सुखमय मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसीलिये कहा है कि—

उक्कोसं दव्वथ्थं, आराहिय जाइ अज्चुयंजाव ।
भावथ्थयेंण पावइ अन्तमुहुत्तेण निव्वाणं ॥१॥
मेरूस्स सरिसवस्य, जत्तिय मित्तं तु अंतरं होई ।
दव्वथ्थयं भावथ्थयं, अंतरमिह तत्तियं णेयं ॥२॥

अर्थ—द्रव्य स्तवन को आराधना करने वाला उत्कृष्ठ बारहवें अच्युत देवलोक तक जाता है। भाव स्तवन से अंतर्मुहुर्त में निर्वाण सुख को प्राप्त करता है। मेरू और सरसों में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर द्रव्य स्तवन और भाव स्तवन में समझना चाहिये.

जिनेश्वर की पूजा भक्ति तीन प्रकार से बताई गई है वह इस प्रकार है। एक सात्विकी, दूसरी राजसी और तीसरा तामसी। वीतराग प्रभु के गुणों के विषय में अत्यन्त लीन; दुःसह उपसर्ग होने पर भी निश्चल भावयुक्त रहे तथा जिन चैत्यादि सम्बन्धी कार्य में आवश्यकता नुसार द्रव्य दे, महा—महोत्सव पूर्वक यथा शक्ति निरंतर निःस्पृहता से भक्ति करे वह प्रथम सात्विकी भक्ति समझना। इससे दोनों लोक में उत्तम सुख प्राप्त होते हैं।

इस लोक में सुख प्राप्त करने के लिए अथवा लोगों को आकृष्ट करने के लिए या आजीविका के लिए जिनेश्वर की भक्ति करना राजसी भक्ति समझना चाहिए।

शत्रु का विनाश करने के लिए आपत्ति दुर करने के लियेऔर चित्त में अहंकार अथवा मत्सर धारण करके भगवान की भक्ति करना तामसी समझना। राजसी और तामसी भक्ति तो सब कोई

सरलता से कर सकते हैं परन्तु सात्विकी भक्ति तो कोई महा-भाग्यशाली व पुण्यशाली ही करते है, क्योंकि सात्विकी भक्ति सर्वोत्कृष्ट है, राजसी मध्यम है और तामसी जघन्य है। इसीलिए पंडित लोग तो पिछली दो प्रकार की भक्ति नहीं करके सर्वोत्तम सात्विकी भक्ति का ही विशेष आदर करते हैं।

इसके अलावा जिनेश्वर की पाच तरह की पूजा भी बतलाई गई है। १-पुष्प वगैरह सेवा करना २-जिन द्रव्य की वृद्धि करना ३-यात्रा करना ४-महोत्सव करना और ५-वीतराग की आज्ञा पालन करना। इसके सिवा और दो प्रकार से भक्ति होती है। एक आभोग से दूसरी अनाभोग से। जो जिनेश्वर के गुणों को सम्यक प्रकार से जानकर उनका यथार्थ वर्णन कर विधि पूर्वक भगवान की पूजा करे वह आभोग से द्रव्य स्तव भक्ति समझना। इससे अनुक्रम से चारित्र का लाभ होता है और इससे संसार समुद्र में भ्रमण कराने वाले अष्ट कर्म का नाश होकर अनन्त अव्याबाध मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जिनेश्वर के गुणों से और पूजा विधि से अज्ञात परन्तु शुभ परिणामपूर्वक वीतराग की भक्ति करना अनाभोग द्रव्य स्तव भक्ति समझना चाहिए।

जिन गुणों से अज्ञात हो परन्तु जिन बिम्ब देखकर जिनके हृदय में अत्यन्त उल्लास पैदा होता है उससे भव्यजनों के अशुभ कर्मों का उच्छेद होकर भविष्य में मदकारी बोधि (समकित) प्राप्त होता है। जो जिनेश्वर के बिम्ब को देखकर द्वेष करते हैं वे प्राणी

संसार में अतिशय निविड़ कर्मबन्ध करते हैं। जिस तरह मृत्यु के समय किसी रोगी को अपथ्याहार की इच्छा होती है यह अशुभ को सूचित करने वाला है उसी तरह कल्याणकारी जिन बिम्ब को देखकर जो प्राणी अशुभ भाव धारण करता है, यह उसके अनन्त संसार भ्रमण की सूचना देने वाला है। इसलिये अपना भला सोचनेवाला मनुष्य जरा भी जिन बिम्ब पर द्वेष नहीं करता है।

अब आठ दृष्टि का स्वरूप कहता हूँ सुनो

१-मित्रा-इस दृष्टिवाले को तृण की अग्नि के समान बहुत अल्पज्ञान होता है। अहिंसादि पांच यम की प्राप्ति, शुभ कार्य में खेद रहित प्रवृत्ति, भावाचार्य की सेवा वगैरह क्रिया वाला होता है और मिथ्यात्व की स्थिति तथा रस मंद होता है।

२–तारा--मित्रा से तारा दृष्टिवाले का मिथ्यात्व विशेष मंद होता है इसलिये उसका ज्ञान छाणे की अग्नि की तरह धीरे धीरे बढता है। वह संतोष, तप, ईश्वर प्रणिधान, अष्टांग योग की कथा में प्रीति और गुणीजनों का विनय आदि क्रिया करनेवाला होता है।

३--बला-- इस दृष्टि वाले का तारा दृष्टिवाले से मिथ्यात्व विशेष मंद होता है इसलिये उसका ज्ञान लकड़ी की अग्नि के समान होता है। वह तत्व श्रवण करने में अत्यन्त प्रीतिवाला, चपल परिणाम रहित होता है और योग की सब क्रिया करता है।

४--दीप्ता--इस दृष्टिवाले का मिथ्यात्व मदतम होता है उसे सूक्ष्मज्ञान नहीं होता परन्तु वह ससार पर विरक्तता, गुरुभक्ति करनेवाला, पापवृत्ति से निवृत्ति पाने वाला और नय, निक्षेप, प्रमाण तथा सप्तभंगी पूर्वक पदार्थों को जाननेवाला होता है, उसे यथा प्रवृत्ति करणादि करण बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। उसका ज्ञान प्रदीप की प्रभा के समान होता है।

५-थिरा-इस दृष्टिवाले का सम्यगदर्शन नित्य होता है। उसे ज्ञान रत्न की प्रभा के समान होता है। वह भ्राति रहित सूक्ष्म ज्ञानयुक्त, पचेन्द्रिय के विषय में अनासक्त होता है। और ससार के सब भावो को उपाधिरूप समझकर तत्वज्ञान को ही सार रूप समझता है। वह सम्यक्त्व में स्थिर चित्तवाला, रोग रहित मधुरकंठ वाला, सुन्दर आकार वाला अनिष्ठुर तथा धर्मध्यान को पुष्ट करने वाला, मैत्री आदि भावना युक्त होता है।

६--कान्ता--इस दृष्टिवाले का ज्ञान तारे के प्रकाश के समान होता है। इसलिये जिस तरह तारे का अभाव नहीं होता, उसी तरह इस दृष्टि वाले को भी ज्ञान का अभाव नहीं होता। वह निरन्तर तत्व ज्ञान की विचारणा, ससार में रहते हुए भी उस पर आसक्ति रहित, अर्हत प्रणित धर्म के विषय में निबिड़ रागवाला और आत्मज्ञान होने से ससार से डरता रहता है।

७--प्रभा--इस दृष्टिवाले का ज्ञान सूर्य की प्रभा के समान होता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार का नाश होता है उसी तरह इस दृष्टिवाले से अज्ञान रूप अंधकार का नाश होता

है। वह विशेषकर ध्यान में ही प्रवृत्त रहता है और बाह्य तथा अभ्यन्तर रोग रहित प्रवर ध्यान से उत्पन्न परमानन्द सुख का अनुभव करनेवाला होता है।

८—परा—इस दृष्टिवाले का ज्ञान चन्द्रमा के समान निर्मल शांत प्रकाश के समान होता है। निरतिचार पद में प्रवर्तमान, आत्मवीर्योल्लास से श्रेण्यारूढ़, हरेक क्रिया आत्मगुण को पुष्ट करने वाली होती है। उसे ही करता है, और अनुक्रम से अपूर्व-करणादि गुणस्थान पर पहुँच कर अन्त में केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक भव्य जीवों का उपकार करता है।

इस प्रकार केवली भगवान की देशना सुनकर देवपाल श्रावक व्रत अंगीकार कर अपने महल में आया। उसके बाद बड़े उत्साह पुर्वक एक अत्यन्त मनोहर देवताओं के भवन से भी अधिक शो–भायमान, जिसका ध्वजदंड और कलश बहुत उर्ध्व भाग में रहकर शोभा दे रहा है ऐसा जिन मंदिर उसने तैयार कराया। उसमें सुरधेनु और कल्पवृक्ष से भी अधिक सौख्यदाता ऐसे सुवर्णमय जिन बिम्ब की स्थापना की। महोत्सव पूर्वक केवली ने उसकी प्रतिष्ठा की! दूसरे भी अनेक जगह कैलाश समान देदीप्यमान चैत्य कराकर व प्रचूर द्रव्य व्यय कर, मन, वचन और काया से विधि पूर्वक प्रथम पद का आराधना निर्मल भाव से करने लगा। रत्न और माणिक्य के बहुमूल्य आभुषण कराकर विधि भक्ति से स्नात्रोत्सव कर अपना जन्म सफल करने लगा।

स्वधर्मी बन्धुओं को मान पूर्वक भक्ति करना, अनेक तीर्थों की यात्र करता, गुणवन्त साधु मुनिराजों को एषणीय भक्तपान का दान करता, जिनद्रव्य वृद्धि करता तथा निरंतर जिनाज्ञा का पालन करता। राज्य कार्य छोड़ अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रथम स्थानक की आराधना करते हुए उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।

एक दिन नृपति देवपाल और रानी मनोरमा नगर बाहर क्रीड़ा करते हुए चल जा रहे थे कि इतने में मनोरमा ने दूर से एक मनुष्य को सिर पर लकड़ी की भारी लेकर आते हुए देखा। उसे देखते ही रानी मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी। राजा ने तुरन्त समयानुकूल शानोपचार से सावधान कर पूछा—'रानी'! यह अचानक तुमको क्या हुआ?

रानी-"नाथ! उस लकड़हारे को देखकर मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिससे मैं मूर्छित हो गई। स्वामिन, क्रूर कर्म की लीला स्वरुप मेरे और उसके पूर्व भव का हाल सुनो। पूर्व भव में वह और मैं स्त्री पुरुष थे। हमारी स्थिति अत्यन्त करुणाजनक और दारिद्र थी, जिससे हम जंगल से लकड़ी लाकर उसे वेचकर अपना निर्वाह करते थे। एक दिन जगल में लकड़ी लेने हम दोनों जारहे थे कि इतने मे नदी के तट के घुल जाने से कल्याणकारी जिन बिम्ब को देखा। वहाँ जाकर पवित्र जल से स्नान कर हाथ में पुष्प लेकर हर्षपूर्वक भाव से प्रभु की भक्ति कर मैंने पापकर्म को नाश किया। उसके बाद मैंने अपने पति से कहा—'नाथ! अनेक

भवों के क्लिष्ट कर्मों का नाश करने वाले श्री जिनेश्वर की यह प्रतिमा है इनको भावपूर्वक प्रणाम कर अपना जीवन सफल कर पुण्य फल का उपार्जन करो, और पापकर्म मल दूर करो'। इस तरह के मेरे हितकारी वचन सुनकर वे क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर तीन-लोक के नाथ के बिम्ब की भर्त्सना करते हुये कहने लगे—अरे अभागिनी ! तू ही इस पाषाण को नमस्कार कर तेरा कल्याण कर। इस तरह वज्र प्रहार समान वाक्य कहकर आगे चले। वास्तव में जिनेश्वरदेव के धर्म के विषय में पूर्व पुण्य के उदय से ही श्रद्धा होती है। इसके बाद समय पाकर मैं मरकर पूर्व सुकृतोदय से राजा के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न हुई और आप जैसे महान् ऐश्वर्यवान् नृपति की पत्नी हुई; और आप पुनः वैसी ही दरिद्रता में रहकर लकड़ी लाकर उदर निर्वाह करता है। वास्तव में किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना कदापि छुटकारा नहीं होता है।"

इस प्रकार रानी के मुह से सारी बात सुनकर विस्मित हो राजा ने उस लकड़हारे को बुलाकर रानी का पूर्व भव का इसका सम्बन्ध सुनाया और कहा कि हे भाई ! तेने पूर्व भव में सुपात्र दान भी नहीं दिया, जिनेश्वर की भक्ति भी भावपूर्वक नहीं की, जिससे इस जन्म में भी तू दुखी और दरिद्री है। अब यदि सुखी होना चाहता है तो श्री जिनेश्वर की भक्ति कर और उनके बताये धर्म की आराधना कर जिससे इहलोक और परलोक का उत्तम सुख प्राप्त हो। परन्तु अभव्य को कभी धर्म पर श्रद्धा नहीं होती। राजा ने उसे बहुत समझाया परन्तु उसे राजा के वचन पर जरा भी

विश्वास नहीं हुआ। जिससे राजा ने उसे अयोग्य समझ कर छोड़ दिया और स्वयं रानी सहित राजमहल को लौट गया।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रानी के देवसेन नामका पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ युवावस्था प्राप्त होने पर उसका सुन्दर राजकुमारी के साथ ब्याह कर दिया। इसके बाद पुत्र को राज्य देकर राजा और राणी ने चन्द्रप्रभु गुरू के पास उल्लासपूर्वक चारित्र अगीकार किया राजा निरतिचार सयम आराधना व दुष्कर तप करता हुआ ग्यारह अंग व नवपूर्व का अध्ययन कर नित्य स्वाध्याय करता हुआ कर्मरज को दूर करने लगा। सयमाराधन करते हुए भी निरन्तर भाव युक्त अरिहँत पद की भक्ति भी करता था। इस प्रकार तीनो लोकमे सब शाश्वत जिनेश्वरो को भावपूर्वक वदना कर व उनके गुणगान कर अपने कर्ममल दूर करने लगा। इसके सिवाय जहा २ श्री जिनेश्वर के कल्याणक हुए वहा २ की यात्रा करता हुआ प्रथम पद की आराधना कर अत समय में अनशन कर प्राणतकल्प में देव हुआ। मनोरमा भी निरतिचार सयम पाल कर कठिन तपस्या कर स्त्री वेद का उच्छेदकर उसी कल्पमें देवागना हुई और उसके साथ मित्र रूप में रहने लगी राजा का जीव वहा से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्रप्त करेगा। रानी का जीव भी वहा से चवकर उन्हीं तीर्थङ्कर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

—

दूसरी कथा

राजा हस्तिपाल

दूसरे सिद्ध पद की आराधन से तीर्थंकरहुये

इस भरतक्षेत्र में इन्द्रपुरी के समान ऐश्वर्यवाला साकेतपुर नाम का नगर था। वहां का राजा हस्तिपाल था। जो इन्द्र के समान तेजस्वी लक्ष्मीवान था जिसका यश सूर्य की किरणों की तरह दसों दिशाओं में फैला हुवा था। वह निष्कंटक होकर न्याययुक्त प्रजा का पालन करता हुआ राज्य करता था। उसके चैत्र नाम का बुद्धिमान मंत्री था एक बार राज्य के लिये राजा की आज्ञा से चंपापुरी नगरी के राजा भीम के पास गया। वहां नगर की शोभा को देखता देखता बीतराग प्रभु श्री वासुपूज्य जिनेश्वर के मंदिर में गया। वहाँ भगवान की स्तुति वंदना कर हर्षपूर्वक बाहर आया। वहां मनोहर कामदेव के समान रूपवान धर्ममूर्ति धर्मघोष मुनि कोअपने शिष्यों सहित देख, प्रसन्न होकर विनय पूर्वक बंदना कर उनके सम्मुख बैठ गया। गुरू ने ज्ञानोपयोग से उसकी योग्यता जानकर संसार का नाश करनेवाली अमृतके समान देशना दी

हे भव्य जीवों! इस संसार रूपी अटवी में भ्रमण करते २ अमृत के तालाब के समान धर्म पूर्व पुण्य से ही प्राप्त होता है।

सब जीवों पर दया करना यह सबसे उत्कृष्ट धर्म कहा है मनुष्य को अपने प्राण के सिवा अन्य कोई अधिक प्यारा नहीं है। जो एक जीव की रक्षा करता है वह त्रिभुवन की रक्षा करता है और जो एक जीव की हिंसा करता है वह त्रिभुवन की हिंसा करता है। ऐसा समझना चाहिये। जीव चौदह प्रकारके है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौरिन्द्रिय सज्ञी पचेन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय। सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त मिलकर जीव के चौदह भेद होते है ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है। इन सबकी धर्मात्मा पुरुष रक्षा करते है। अपनी आत्मा और दूसरो की आत्मा में जरा भी फर्क नहीं समझते है। आत्मवत् सर्व भूतेषु इस प्रकार सबको अपनी आत्मा के समान देखते है। दूसरे शास्त्रो मे भी कहा है कि —

यत्र जीवः शिवस्तत्र, न भेदः शिवजीवयो।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि, शिवभक्तिसमुत्सुक ॥१॥

अर्थ—जहाँ जीव है वहाँ शिव है। शिव और जीव में भेद नहीं हैं। इसलिये शिव की भक्ति करनेवाले को सर्व जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार जीवो पर दया करने से आत्मा निर्मल होती है और धीरे २ यह आत्मा जन्म जरा मृत्युआदि क्लेशो से मुक्त होकर अनन्त ज्ञान, दर्शन चारित्र और वीर्य को धारण करने वाला शुद्ध चिदानन्दमय सर्वदा कर्मरहित होकर लोक के अग्र भाग वाले सिद्ध क्षेत्र में जहाँ सब सिद्ध भगवान रहते है वहाँ पहुँचता है

उन सिद्ध जीवो केसुख का वर्णन करोड़ो मुख से भी नहीं लिया जा सकता हैं। सुर और मनुष्य सम्बन्धी जो जो उत्तम प्रकार के सुख हैं उन सबको इकट्ठा किया जाय तब भी उस सुख की तुलना नहीं हो सकती अर्थात, उन सब सुखो से भी मोक्ष का सुख अनंतानंतगुणा अधिक है। जिसने अमृत रस का पान किया हो उसे अन्य रस कैसे अच्छे लग सकते हैं अर्थात नहीं लगते। जिसने मोक्ष के अद्वितीय के सुख को जान लिय है उसे मनुष्य सम्बन्धी पौद्गलिक सुख की इच्छा किस तरह हो सकती है। सभी सिद्धत्मा अमूर्त होने से परस्पर बाधा रहित मोक्ष स्थान में रहते हैं। सिद्ध के जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष से थोड़ी अधिक है। मध्यम अवगाहना तीन हाथ से थोड़ी कम होती है और जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल होती है।

जैसे अमृत के एक बिन्दु मात्र से तीव्र विष की व्याधि नाश होती है, वैसे सिद्ध भगवान् के ध्यान से जीवों के दुष्कृत्यों की परंपरा नाश होती हैं और तीनों लोकों को पूज्य ऐसी उत्कृष्ट पदवी तत्काल मिलती है।

इस प्रकार गुरू की देशना सुनकर मंत्री बोला —'हे प्रभु! सिद्ध की भक्ति से संसार का नाश करने वाले श्रावक के व्रत मुझे दीजिये। गुरू ने योग्य जानकर उसे व्रत दिये व्रत लेकर गुरु को वंदना कर मंत्री राज्य का कार्य पूरा कर अपने नगर में आया। राजा को प्रणाम कर योग्य स्थान पर बैठ गया। तब राजा ने

पूछा 'हे मंत्री ! तुमने चंपापुरी में जो कोई आश्चर्य देखा हो वह कहो

तब मंत्री ने कहा—'हे राजा ! उस नगरी के मंदिर देव भवन समान अतिशय मनोहर हैं जिसे देखकर मन को तृप्ति नहीं होती । जगह जगह पर दाता और भोक्ताओं के घर हैं । उस शहर के मध्य में तीनो लोक को आल्हाद पैदा करनेवाला अद्भुत शोभायमान श्री वासुपूज्य स्वामी का मंदिर है । उस मंदिर में सबके नेत्रों को मोहनेवाली, दिव्य आभूषणो से विभूषित वासुपूज्य स्वामी की मणिमय प्रतिमा है। मैने मेरे पुण्योदय से उन जिनेश्वर की प्रतिमा के दर्शन कर अपने नेत्र सफल किये । भाव सहित भक्ति पूर्वक नमस्कार कर लौटते समय धर्मघोष मुनि मिले । उनको नमस्कार कर मैं बैठा । गुरुदेव ने उपकार दृष्टि से सिद्ध का स्वरूप बताया । मैंने भी उसी प्रकार अंगीकार किया । इस प्रकार मंत्री के मुख से बात सुनकर राजा मन में विचारने लगा कि — अहो ! वे उपकारी मुनिराज यहाँ कब पधारेंगे और कब उनके दर्शनकर मैं अपने मन का मनोरथ पूर्ण करुंगा । ' इतने में धर्मघोष मुनि शिष्यो सहित उपवन में आ पहुँचे । राजा को उनके आने की सूचना मिलते ही प्रसन्न होकर मंत्री सहित गुरुदेव की वंदना करने गया । वहाँ जाकर विधि पूर्वक गुरूदेव को वंदना कर यथोचित स्थान पर बैठ गया । इतने में गुरु महाराज सिद्ध का स्वरुप बताने लगे :—

"हे भव्यजीवों ! धर्म दो प्रकार का है एक श्रमण धर्म दूसरा श्रावक धर्म । उस धर्म का सम्यक्त्व सहित आचरण करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है । गुरु महाराज की देशना सुनकर राजा बोला — हे करुणा समुद्र ! जो दृष्टि से अगोचर है , जिसकी रुपरेखा व काया अगोचर हैं, ऐसे सिद्ध भगवान की सेवा भक्ति किस प्रकार की जाय ? वह आप कृपा कर हमको बताइए । गुरू महाराज ने कहा 'हे राजन् ! जो सिद्ध स्थान में रहनेवाले निरंजन–निराकार, निःकषायी, जितदेह, शुद्धात्मा, सिद्ध स्वरूप का ध्यान करता है और उनकी मूर्त्ति की द्रव्य भाव से पूजा करता है वह प्राणी घातिया कर्मों का क्षय कर अनंतानंत सुख देनेवाली तीन लोककी सम्पदा प्राप्त करता है। इस प्रकार स्वरुप सुन राजा विचारने लगा –अहो ! वह पुरुष धन्य है जो भव भ्रमण को दूर करने वाले जिन धर्म को अराधना करता है । मैं भी उसी को ग्रहण करुं । इस विचार से सिद्धपद के अराधना का व्रत ग्रहण कर अपने घर आया । पीछे निरंतर बहुत भावपूर्वक स्थिर चित्त से "णमा सिद्धाणं" पद से सिद्ध परमात्मा का ध्यान करता हुआ मंत्री सहित सम्मेत शिखर, शत्रुंजय' आदि सिद्धों के पवित्र स्थानो की यात्रा कर अपनी आतमा को निर्मल करने लगा । अनुक्रम से निर्मल ध्यान से सिद्ध पद की अराधना कर मोक्ष सुख के निधान स्वरुप तीर्थंकर नाम कर्म बांधा । इसप्रकार दीर्घकाल तक राज्य ऋद्धि और सिद्ध पद की अराधना कर मंत्री सहित गुरुके पास चारित्र ग्रहण किया ।

पीछे राजा अष्ट प्रवचन माता का सम्यक् प्रकार से पालन करता अप्रमत्तपणे दुष्कर तप और क्रिया कर कर्मों का नाश करता हुआ ग्यारह अंग का अध्ययन कर गुरू महाराज की आज्ञा लेकर सम्मेत शिखर की यात्रा के लिये गया। मार्ग में उसने यह अभिग्रह किया कि जब तक सिद्ध परमात्मा की मूर्ति के दर्शन न होगें तब तक आहार नहीं लूंगा। ऐसा दृढ़ अभिग्रह देख इन्द्र महाराज ने मुनि महाराज की सभा में प्रशंसा की। उसके वचन पर विश्वास न कर एक अग्नि कुमार देव उस मुनि की परीक्षा के लिये वहाँ आकर अनेक प्रकार के क्लिष्ट उपसर्ग करने लगा। तीव्र भूख और प्यास की ऐसी वेदना पैदा की कि समान्य मनुष्य तो क्षण भर में प्राण रहित होजाये। ऐसी वेदनादो माह तकसहन करने से मुनि की काया अत्यन्त क्षीण होगई फिर भी उन्हें जरा भी क्रोध नहीं आया। तब देवता ने प्रगट होकर सारी व्यथा दुर करदी और मुनि के चरणो में नमस्कार कर कहने लगा। महाभाग्य! हे करुणा सागर! समता सिंधु! मेरे सारेअपराधक्षमा करो। इन्द्र महाराज ने सभा में आपके अभिग्रह की प्रशंसा की उसपर मुझे विश्वास नहीं होने से मैने आपके साथ यह कार्य किया है। अत आप क्षमा करे। ऐसा कह देव वापिस देवलोक में चला गया। राजर्षि मुनि ने दो मास तक उपसर्ग सहन कर सम्मेत शिखर पर पहुँच कर सम्पूर्ण सिद्ध प्रतिमाओ को वन्दन कर पीछे पारणा किया। इस प्रकार निरतिचार चारित्र पालकर अन्त समय में अनशन कर मत्री तथा राजर्षि दोनो अच्युत

ल्प में देवहुए। वहां से चवकर राजा महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी पाकर मोक्ष जायेगे और मंत्री वहां से चवकर उनहीं तीर्थंकर के गणधर होकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।



तीसरी कथा

श्री शेठ जिनदत्त और हरिप्रभा

जा तीसरे प्रवचन पद के आराधन सेतीर्थंकर हुवे

भरतक्षेत्र में बसंतपुर नामका एक बहुत ही रमणीक नगर था। वहां समकित धारी जिनदास नाम का एक व्यापारी रहता था। उसके शीलवान पतिवृता जिनदासी स्त्री तथा रूपबान, विनयी और विवेकी जिनदत नामका पुत्र था। उसकी चन्द्रातप विद्याधर के साथ मित्रता थी। उस विद्याधर ने जिनदत्त को बहुरुपिणी विद्या सिखा दी थी। एक दिन वे दोनो मित्र उद्यान में गये वहां मनोहर नाटक कराकर आनन्द से बैठे थे, इतने में एक पुरुप हाथ में चित्र लेकर जिनदत्त को प्रणाम कर, चित्र जिनदत्त को देकर एक तरफ खड़ा हो गया। जिनदत्त चित्र को देख प्रफुल्लित हो कहने लगा—हे चित्रकार अप्सरा के रुप को भी मात करने वाली यह युवती कौन है। चित्रकार—हेभाग्यशाली चंपापुरी में परोपकारी व धनाढय धनावाह सेठ रहता है। उसके घर में दो अमूल्य वस्तु हैं। एक बहुमूल्य मुक्ताफल का एकावली हार और

दूसरी रुपवती और गुणवती कन्या हरिप्रभा हैं। उस कन्या के रूप गुण और सौन्दर्य का में क्या वर्णन करूँ वह साक्षात रति और सरस्वती के समान चन्द्रवदनी सुभलोचनी हस्ति के सामान गतिवाली व अप्सरा के रुप को भी पराजय करनेवाली है। उसी कन्या का यह चित्र हैं। मैंने देवकृपा से अपनी आजीविका के लिये बनाया हैं।

चित्रकार के मुख से यह सुनकर जिनदत्त ने एक लाख मुल्य वाली रत्नों से जड़ी हुई करधना देकर वह चित्र खरीद लिया। चित्र की सुन्दरता देख दिग्मुढ़ हो घर आया परन्तु उसका मन किसी काम में नहीं लगा। यहा तक कि खाना पीना सोना बैंठना, चलनाफिरना सब छोड़ दिया और रात दिन उसी चित्र पर ध्यान लगाकर बेठा रहता। इस बात का पता उसके पिता जिनदास को लगा, तो उसने आकर कहा — बेंटा। किसी धूर्त के कपट जाल में फसकर एक लाख रुपये पर पानी फेरनेवालाव काम धन्धो को छुड़ाने वाला यह तूने चित्र क्यो लिया? द्रव्योपार्जन में कितना परिश्रम करना पड़ता है। उसका तुझे क्या पता? कठिन परिश्रम से एकत्र किया हुआ धन यदि इस प्रकारव्यय कर देगें तो थोडे समय में दरिद्री हो जायेगें। परन्तु तुझे बिना परिश्रम के पिता से मिले हुए धन की क्या परवाह? इस तरह उलाहना देकर सेठ अपने काम पर चला गया।

उपरोक्त चुभनेवाले वचन सुन जिनदत्त चमका और मन में विचारने लगा — ओ हो पिता को मुझ से अधिक प्रेम धन से है इस विचार से जिनदत्त की आखो से आसू की धारा

निकलने लगी। थोड़ी देर इसी अवस्था में रहा और फिर सोचने लगा। अरे इसमें पिता का क्या दोष सारा संसार स्वार्थी है। माता भी यदि पुत्र कमाता है तो प्रीति करती है। स्त्री भी यदि पति नाना प्रकार के आभूषण लाकर देता है तो प्रेम करती है मित्र भी यदि स्वार्थ नहीं निकलता है तो उसे छोड़ देता है और राजा भी धनवान की ही इज्जत करता है। वास्तव में सब जगह स्वार्थ का ही स्नेह है जहां तक स्वार्थ होता है वहां तक ही स्नेह है इसलिये इस में पिता का क्या दोष है? पिता के द्रव्य की एक कोड़ी भी काम में नहीं लेनी चाहिए। विदेश जाकर धन पैदाकर के ही पिता के घर में प्रवेश करूंगा। ऐसा निश्चय कर उसी दिन रात्रि को जब सब सो रहे थे व सब जगह शान्ति का साम्राज्य था तब जिनदत्त विना किसी को कहे घर से निकल कर चला गया। चलते चलते चंपापुरी में धनावाह सार्थवाह के घर पहुचा। सार्थवाह ने रात को स्पप्न में कल्पवृक्ष देखा था इसलिये आगन्तुक को देखते ही अत्यन्त हर्ष पूर्वक आदर से जगह दी। कहा है कि

सज्जन आव्या पाहुणा, आपे चार रत्न।
पाणी, वाणी, वेसणुं, आदरसेंतीअन्न॥

खरे खर। भाग्यशाली पुरूष जहां जहां जाता है वहां वहां उसका आदर सत्कार होता है। कहा है कि—

पान पदारथ नर सुगुण, वण तोल्यां वेचाय।
जिम जिम चंपे भुंमडी त्युं त्युं मूल मोघेरा भाय॥

और भी कहा है कि—

गुणा सर्वत्र पुज्यते किमाटोपै प्रयोज न ।
विक्रियन्ते न घटामि गावि : क्षीर विवर्जिता ॥

सब जगह गुणो की पूजा होती है, आडम्बरों से क्या प्रजन ? बिना दूधवाली गायें सिर्फ बाधने के लिये नहीं बिकती है

गुणी जन जहाँ जाता है वहा अपने गुणो से सबके हृदय को आकर्षित कर सबका प्रिय बन जाता है। जिनदत्त ने भी अपने गुणों से सार्थवाह के सारे कुटुम्ब को अर्हत धर्म का उपदेश कर धर्म पर श्रद्धावान् बनाया। इस तरह कुछ दिन व्यतीत होने पर सार्थवाह ने जिनदत्त के गुणो से मुग्ध हो पूछा—'हे महाभाग्य! तुमको यहाँ रहते कुछ दिन व्यतीत हो गये हैं परन्तु हम सबको तुम्हारे गाव, नाम और कुल का पता नहीं है। तथा आप किस कारण से देशाटन कर रहे हैं ? यदि आपको कहने में कोई आपत्ति नहीं हो तो हमें बता कर कृतार्थ करो।

जिनदत्त—श्रेष्ठीवर्य मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा कह उन्होंने अपना सारा वृतान्त बताया। सार्थवाह ने उसका वृतान्त सुन हृदय में प्रसन्न हो विचारने लगा—"वास्तव में यह उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है और गुणवान है। इसलिये मेरी पुत्री हरिप्रभा के लिये यह योग्यतर है" ऐसा विचार कर बड़े उत्साहपूर्वक जिनदत्त के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर कन्यादान मे अपार धन दिया। वास्तव में पुण्यशाली पुरुष जहाँ जाता है वहा वह सुखी ही होता है। कहा है कि—

सर्वत्र वायसाः कृष्णाः सर्वत्र हरिताः शुकाः ।
सर्वत्र दुखीनां दुःखं, सर्वत्र सुखीनां सुखं ॥१॥

अर्थ—जिस तरह कौए सब जगह काले और तोते सब जगह हरे होते हैं। उसी तरह सुखियों को सब जगह सुख और दुखियों को सब जगह दुख मिलता है।

इस तरह जिनदत्त पूर्व पुण्योदय से सुख पूर्वक श्वसुर के यहाँ कुछ समय रहकर सबकी आज्ञा लेकर अपने नगर की ओर चलने को तैयार हुआ; तब सेठ ने दहेज में अपना अमूल्य एकावली हार तथा अपार धन दिया। साथ में नौकर रथ, पालकी आदि भी देकर हर्षपूर्वक विदा किया।

अनेक नौकरों के साथ चलते चलते मार्ग में एक सरोवर के पास मुकाम कर सब विश्राम करने लगे। वहाँ से थोड़ी दूर वृक्षों की कुञ्ज में विद्याधर मुनि को कायोत्सर्ग में स्थिर देख दोनों स्त्री पुरुष चारण मुनि के पास आकर विनय पूर्वक वंदना कर उनके सामने बैठ गये। इतने में मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ कहा और उनको योग्य समझ धर्मदेशना देने लगे।

'अहो भव्य जनों, इस अनादि और दुख से भरपूर संसार समुद्र में डूबते प्राणी को धर्म केसिवाय किसी का सहारा नहीं है। धर्म से सब प्रकार का सुख, वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उत्तम कुल में जन्म होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है। धर्म कई प्रकार से होता है—जैसे १—सब जीवों पर दया करने से, २—ज्ञान व क्रिया से, ३—ज्ञान, दर्शन और चारित्र से, ४—दान, शील तप और भावना से, ५—पंच महाव्रत से, ६—षड् आवश्यक से,

७–सप्तनय से, ८–अष्ट प्रवचन से, ९–नव तत्व से और १०–क्षमादि दश विधि यति धर्म से, इस तरह धर्म के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। उनकी आराधना करने से प्राणी सुर नर सम्बन्धी अनेक प्रकार के सुखों को प्राप्त कर अन्त में कर्म मल रहित हो निरंजन निराकार हो परमानन्द को प्राप्त करता है।

यह देशना सुन विनय पूर्वकप्रणाम कर जिनदत्त बोला– हे भगवन्! ऐसा उत्तम प्रकार का धर्म किसने बताया वह कृपा कर कहो? मुनि –हे महाभाग्य। यह धर्म प्राणी मात्र का उपकर करने वाले श्री जिनेश्वर भगवान ने बतलाया है। जिनदत्त – हे भगवन्! ऐसे उत्कृष्टा पद का लाभ किस पुण्य के उदय से प्राप्त किया जा सकता है? मुनि – सौभाग्यशाली त्रैलोक्यवंद्या तीर्थंकर पद की प्राप्ति के लिये अरिहंतादिक बीस स्थानककी निज शक्तिनुसार आराधना करने और उसमे भी तीसरे पद –अर्थात् श्री सघ की भक्ति भावपूर्वक करने सेउत्कृष्ट पद प्राप्त होता है। इसलिये कहा है कि –

गुणानामिह सर्वेषा रत्नानामिव रोहणः।
श्रीमान्, श्रमणसघोय आधारः परमो भुवि॥

अर्थ – जैसे इस पृथ्वी पर सब रत्नों का आधार रुप रोहणाचल है वैसे सर्व गुणों का आधार रूप श्री श्रमण सघ है।

इसे तीर्थंकर भगवान भी धर्मोपदेश समय "णमो तित्थस" कहकर नमस्कार करते है। श्री सघ की भक्ति परम पद को देनेवाली है। श्री सघ की भक्ति करनेवाले विशाख नामके सेठ को उसी में किसी सम्यग्दृष्टि देव ने प्रसन्न होकर चिन्तामणि

रत्न दिया था। बाद में उस सेठ ने श्रीसंघ की अतिशय गौरव पूर्वक भक्ति कर और सम्यकत्व शुद्ध कर तीर्थङ्कर पद प्राप्त किया। इसलिये हे सौभाग्यशाली ! सब क्लेशों को दूर करने के लिये उल्लासपूर्वक श्री संघ की अत्यंत भाव से भक्ति कर।

इस प्रकर श्री संघ की भक्ति का महत्व सुन भावपूर्वक तीसरे पद की आराधना का नियम गुरू से श्रवण कर पुनः विनय पूर्वक वंदना की। पीछे परिवार सहित अपने नगर में गया। स्वजन सम्बन्धी उसकी अत्यन्त ऋद्धि को देख मिलने आये। इसके बाद निरंतर भावपूर्वक तपस्वी ग्लान, वृद्ध आदि सुपात्रों को वस्त्र, पात्र, आहार, औषधि आदि देने लगा। इसी तरह निरन्तर जिनेश्वर भगवान को प्रणाम कर भवों का नाश करनेवाली गुरु देशना सुनकर सम्यकत्व में निश्चला चित्त वाला हो चतुर्विध संघ की यथाशक्ति भक्ति करने लगा। कहा है कि जो भी श्री संघ की भक्ति कर अपना द्रव्य सुत्पात्रों में व्यय करता है। वह सर्व एहिक सम्पतियों से अपना गृह भरता है और जो कुपात्रों में अपना धन खर्च करता है वह जिस प्रकार रोगी को कुपथ्य देने के परिणाम में दुखी होता है। उसी तरह कुपात्र में व्यय किया गया द्रव्य कष्ट को देने वाला होता है। कुछ समय बीतने पर उस नगर के राजा को बहुमूल्य भेंट की। उसे पाकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बड़े आदर से जिनदत्त को बुलाकर राज्य सभा में उसे नगर सेठ की पदवी प्रदान की।

इससे नगर में उसका बहुत मान बढ़ गया तथा देश विदेश में भी श्री संघ की भक्ति के प्रभाव से यश फैलने लगा।

एक समय देवलोक में देवसभा में इन्द्र ने जिनदत्त सेठ की प्रशंसा करते हुए कहा कि मनुष्यों में श्रेष्ठ, निरभिमानी कदाग्रह रहित श्री संघ की शक्ति अनुसार भक्ति करने वाले जिनदत्त सेठ को धन्य है क्योंकि वर्तमान समय में उसके समान अन्य कोई नहीं है। इस प्रकार इन्द्र महाराज के वचनों पर विश्वास न कर रत्नशेखर देव जिनदत्त की परीक्षा लेने के लिये श्रावक का कपट वेष बनाकर सेठ के घर आया। उसे देख जिनदत्त ने खड़े हो प्रणाम कर कहा — हे भाग्यशाली पधारो मैं आज आपके दर्शन से पवित्र हुआ हूँ। मेरा आज का दिन धन्य है कि आप स्वधर्मी बन्धु के पवित्र दर्शन हुए। इस प्रकार उसका आदर सत्कार कर सुन्दर आसन पर बिठा कर कहा — हे पुण्यशाली! कहो क्या आज्ञा है। कपट श्रावक — हे सेठ! मैंने अनेक मनुष्यों से आपकी प्रशंसा सुनी है कि आप कल्पवृक्ष के समान स्वधर्मी की कोई भी प्रार्थना अस्वीकार न कर उसे इच्छित वस्तु बिना किसी संकोच के देते है। इसीलिये मैं अपनी स्त्री के आग्रह से उसकी इच्छा पूरी करने के लिये आपसे एकावली हार लेने आया हूँ। यदि मैं बिना हार के घर जाऊँगा तो इच्छित वस्तु नहीं मिलने के कारण वह अपने प्राण त्याग देगी। मुझे मेरी स्त्री प्राणों से भी अधिक प्रिय है इसलिये उसके बिना मै एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकूँगा। अतः हे कृपासिन्धु! योग्यायोग्य का विचार किये

बिना मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न कर एकावली हार मुझे देंगे – ऐसी आशा है।

इस प्रकार के करुणामय वचन सुनकर जिनदत्त ने कहा – हे स्वामी ! यह सब द्रव्य स्वधर्मियों के लिये ही है। मैं तो सिर्फ उसका खर्च करने वाला हूँ। ऐसा कह तुरन्त अत्यन्त मूल्यवान एकावली हार निकाल कर उसके सुपुर्द किया। उसकी ऐसी उदारता देख देव प्रसन्न हो अपने असली रुप में प्रगट हो उसके सिर पर फूलों की वृष्टि कर उसकी स्तुति करने लगा। – हे सेठ ! आपको धन्य है, आपने श्रावक धर्म का यथार्थ पालन किया है तथा प्रवचन की और श्री संघको भक्ति कर जिन शासन की प्रभावना की और अपने कुल को उज्ज्वल किया है इस प्रकार स्तुतिकर चिन्तामणि रत्न देकर देव अपने स्थान को लौट गया। चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से जिनदत्त श्री संघ के इच्छित कार्य पूरे करने लगा। फिर चार ज्ञान को जानने वाले रत्नप्रभु गुरू के पास अपनी भव स्थिति पूछी। तब गुरू ने कहा, 'हे देवानुप्रिय ! तू यहाँ से मृत्यु पाकर पहले देवलोक में देवता होगा, वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करेगा। इस प्रकार गुरू के वचन सुनकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक सात क्षेत्रों में खूब द्रव्य खर्च करता हुआ शुभ भावना पूर्वक अपनी स्त्री और दूसरे बहुत श्रावकों सहित गुरू महाराज के पास से चारित्रलिया। मुनि अवस्था में भी उल्हास पूकर्व प्रवचन की भक्ति करता मुनियों को गोचरी

लाकर देता और यथाशक्ति वैयावच्च करता हुआ निरतिचार चारित्र पालन कर काल धर्म पा प्रथम ग्रैवेयक देवलोक में ऋद्धि वाला देव हुआ, वहा से आयु पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में आगामी चौवीसी में तीर्थङ्कर हो मोक्ष प्राप्त करेगा। हरिप्रभा भी इन्हीं तीर्थङ्कर की गणधर हो मोक्ष प्राप्त करेगी।

चतुर्थ कथा

राजा पुरुषोत्तम

जो चतुर्थ आचार्यपद की भक्ति से तीर्थङ्कर हुए

इस भरतक्षेत्र में पद्मावती नाम की नगरी थी। वहाँ इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् पुरुषोत्तम राजा निष्कंटक हो प्रजा का पालन करते हुए सुख पूर्वक राज्य करते थे। उसके बुद्धिमान तत्वातत्व का जाननेवाला, सम्यक्त्व श्राद्ध गुणो से विभूषित, अर्हत धर्म को माननेवाला सुमति नाम का मंत्री था। एक दिन राजा सर्व सामन्तों सेठों और मंत्रीओ सहित सभा में बैठे हुए थे कि इतने में एक कपटी, रौद्र नाम का कपाली, योगी राजा को आशीर्वाद देकर सभा में आकर बैठ गया। राजा ने आदर पूर्वक कुशल क्षेम पूछ आने का कारण पूछा। योगी बोला—हे नरेन्द्र तेरे प्रताप से तेरी सम्पूर्ण प्रजा सुख से रहती है तो फिर मुझ योगी की कुशल क्षेम का क्या पूछना! अर्थात मैं आनन्द पूर्वक हूँ। परन्तु

आज छः माह से एक विद्या सिद्ध कर रहा हूँ किन्तु वह उत्तर साधक विना सिद्ध नहीं होती। इसलिये हे परोपकारी पुरुषोत्तम नरेन्द्र मेरे पर अनुग्रह कर मेरा उत्तर साधक बन विद्या सिद्ध करने में सहायता कर मेरे श्रम को सफल कर, यही मेरी प्रार्थना है।

योगी की बात सुन राजा ने कहा—योगीन्द्र! मै खुशी से आपका उत्तर साधक बनुगा, आप सर्व होम की सामग्री तैयार करो में आपके साथ हूँ। राजा की यह बात सुनकर सम्यक्त्व का जाननेवाला मंत्री कहने लगा—हे नृपति! वीतराग धर्म को जाननेवाले को मिथ्यात्वी का साथ नहीं देना चाहिये क्योंकि शंका कांक्षा, विचिकित्सा पाखण्डी की प्रशंसा और उनका साथ ये समकित के पांच अतिचार हैं। इससे समकित मलीन होता है और समय पर कष्ट होने की संभावना है। इसलिये जिनेश्वर ने इन पाँच अतिचार का त्याग करने को कहा है।

राजा—मंत्रीश्वर! आपका कहना सत्य है, परन्तु इस क्षण भंगुर देह से यदि किसी का उपकार नहीं हुआ तो यह जीवन किसकाम का? क्योंकि अन्त में तो देहभस्मीभूत होने वाला है। मेरे कुछ भी हो, उसका मुझे कोई चिंता नहीं। यदि मेरे कारण इसका कार्य सिद्ध हो जायगा तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

इस प्रकार मंत्री के मना करने पर भी योगी के साथ तलवार लेकर राजा सूर्यास्त होने पर भयंकर वन में योगी के स्थान पर पहुँचा तब योगी ने कहा हे राजा एक मनुष्य के शव

को ला ताकि मैं जाप शुरू करूं। तुरन्त राजा श्मशान भूमि की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में चारों दिशाओं में देखता हुआ चला जाता है। इतने में एक वृक्ष की शाखा में एक योगी का शव लटकता हुआ देखा। उसे देख राजा तलवार से रस्सी काटने लगा परन्तु रस्सी कटी नहीं शव भी नहीं गिरा तीन बार तलवार से काटने पर भी शव नहीं गिरा। इसलिये राजा ने वृक्ष के ऊपर चढ़कर रस्सी को खोलकर शव को नीचे उतारा। इतने में राजा की कुलदेवी प्रगट हुई और कहने लगी हे परोपकारी राजेन्द्र! मेरी बात सुन। जिस योगी का तू उत्तर साधक बना है वह कपटी योगी तेरे को ही मारकर सुवर्ण पुरुष बनाना चाहता है। अब बराबर सावधान रहना और मन में ॐकार शब्द का जाप करते रहना। इस जाप के प्रभाव से जब तू योगी के कपाल में धूम्र का प्रकाश देखे तब मेरा स्मरण करना तब मैं प्रगट हो जाऊँगी। ऐसा कह देवी अदृश्य होगई और राजा शव लेकर योगी के पास गया। योगी के कहने पर शव को स्नान करा उसकी पूजा कर बाये हाथ में तलवार लेकर अग्नि कुण्ड के पास राजा बैठ गया। कपटी योगी मौन लिए हुए एक सौ आठ बार विद्या मन्त्र का जाप करता हुआ पापमय वस्तु का होम करने लगा। उस समय राजा शव के चरणों को काटने लगा और मन में ॐकार का जाप तत्परता से करने लगा। इतने में योगी के कपाल में धूम्र का प्रकाश दिखने लगा और राजा ने कुलदेवी को स्मरण किया। कुलदेवी के प्रभाव से और राजा के पुण्योदय से शव उछलकर

कुण्ड में गिरा । ऐसा देखकर योगी सोचने लगा कि क्रिया करने में कोई कमी रह गई मालूम होती है, इसलिए फिर जाप करूं। ऐसा विचार कर फिर जप करने लगा तब भी शव ही पुनःगिरा। इससे क्रोधित हो राजा को मारने के लिये विद्या देवी का ध्यान करने लगा। इतने में राजा की कुलदेवी ने उसी योगी को उठाकर अग्निकुण्ड में फेंक दिया और वह तुरन्त सुवर्ण पुरुष बन गया। वास्तव में जो दूसरों का बुरा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह अपना ही नुकसान करता है। कहा है कि—

द्रुह्यान्ति ये महात्म्येभ्यो, द्रुह्यान्यत्मन एव ते ।
सूर्येन्दुद्रोहकृद्राहुः शीर्षशेषोऽभवन्नकिं ॥

अर्थः– जो महात्मा का बुरा चाहता है वह स्वयं अपना ही बुरा करता है। सूर्य चन्द्र से द्वेष करने से क्या सिर्फ राहु का मस्तक सिर्फ ही रहा ? अर्थात राहु के सूर्य चंद्र का बुरा चाहने से धड़ चला गया और सिर्फ मस्तक ही रहा।

यह आश्चर्य घटना देख राजा हृदय में हर्ष और विषाद पूर्वक सोचने लगा कि विद्या का कैसा प्रभाव है ? फिर उस सुवर्ण पुरुष को उठा कर गुप्त स्थान में रख दिया और अपने महल में आकर सो गया प्रातः काल रात्रि की सारी घटना मंत्री को कही और सुवर्ण पुरुष को महल में मंगवाया। एक दिन राजा चतुर्दशी का उपवास कर रात्रि को सुख पूर्वक सो रहा था उस समय उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसने किसी एक नगरी में रहनेवाली रत्नादेवी नाम की तापसी के पास

अत्यत रूपवान, लावण्यमयी राजकन्या को शास्त्राभ्यास करते देखा। ऐसी अनुपम सौन्दर्यमयी सुन्दरी को देखकर राजा का स्वप्न भग हो गया और वह जग गया प्रात काल मत्री को बुलाकर अपनी जिज्ञासा बतलाई। यह सुनकर मत्री ने कहा हे राजा स्वप्न में देखी हुई वस्तु का क्या विश्वास? क्योंकि वात, पित्त, कफ और चिंता से तथा सुनी हुई बात से आया स्वप्न व्यर्थ होता है। इस पर एक मूर्ख तापस की कथा कहता हूँ उसे आप सुनिये —

वैभवशाली धनपुर नाम का एक सुन्दर गाँव था। वहाँ बचपन से तपस्या करनेवाला एक तापस रहता था। उसने एक दिन स्वप्न में अपने मठ को केशरिया लड्डुओं से भरा हुआ देखा। सवेरे प्रसन्नता से जागृत होकर अपने शिष्यों से कहने लगा कि आज इस गाँव के सब लोगों को बुलाकर केशरिया लड्डुओं का भोजन कराओ। गुरु की आज्ञा से शिष्यों ने गाँव के सब लोगों को मठ के समीप इकट्ठा किया। पीछे मठ में जाकर शिष्यों ने देखा वहाँ कोई भोजन की सामग्री नहीं थी तो गुरु के पास आकर कहने लगे कि महाराज सब लोग आ गये हैं परन्तु मठ में भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए अब वे लोग रुके या जावें? तापस ने कहा अरे मूर्खो मैंने रात्रि को स्वप्न में लड्डु से भरा हुआ अपना मठ देखा था इसलिए आये हुए सब लोगों को लड्डु का भोजन कराकर उनकी भक्ति करो। जब लोगों ने यह बात सुनी तो वे तापस की मूर्खता पर हसते हुए भूखे ही घर

चले गये। इसलिए हे राजन ! स्वप्न की बात कदापि सच्ची नहीं होती इसलिए यह विचार मन से दूर कर दीजिये। परन्तु कहा है कि स्त्री, बाल, नृप और मूर्ख ये चार अपनी हठ को नहीं छोड़ते। मंत्री ने राजा को बहुत समझाया परन्तु किसी तरह भी राजा ने अपनी हठ नहीं छोड़ी। तब बुद्धिमान मंत्री ने विचार कर एक अनुपम दानशाला बनाई, उसमें राजा ने जैसा स्वप्न में देखा उसके अनुसार दो तपस्विनियों के पास एक सुन्दर राजकन्या अभ्यास कर रही है ऐसा चित्र बनवाया और वह ऐसे स्थान पर रखा कि आने वाले सब लोगों की दृष्टि उस पर पड़े। इसके अलावा दानशाला में जो कोई परदेशी आता उसे भोजन करा कर मंत्री उससे देश परदेश में देखी हुई नई २ बातें सुनता। इस प्रकार कई दिन व्यतीत होने पर दो परदेशी पंडित उस दानशाला में आये। मंत्री ने उनको भोजन कराया। भोजन करते २ उन पंडितो की आंखों से अश्रुप्रवाह होने लगा। यह देखकर मंत्री ने शांत और मधुर वचन से कहा हे प्रियजनो ! किस कारण आपकी आँखों से आँसू निकल रहे है ? क्या भोजन में आपको कोई इच्छित वस्तु नहीं मिली या किसी ने अपमान किया है ? जो बात हो वह मुझे सच सच कहो। परदेशी ने कहा हे मंत्रीवर ! आपके भोजन में कोई कमी नहीं है और न किसी ने हमारा अपमान किया है परन्तु इस चित्र से हमको हमारी नगरी और कुटुम्ब का स्मरण हो आया है। इसीलिये हमारे नेत्रों से आँसु निकले हैं। हे मंत्री ! बहुत वर्षों तक विदेशों में घूमने पर अपनी जन्मभूमि अथवा परिचित पदार्थ को देख कर

किसके हृदय को चोट नहीं पहुँचती ? हमारे अश्रुप्रवाह का कारण सिर्फ यह चित्र ही है।

पंडित से वृतान्त सुनकर मंत्री ने पूछा कि यह तुम्हारी नगरी कहाँ है और वहाँ कौन राज्य करता है ?

पंडित-हे मंत्रीवर ! यहाँ से उत्तर दिशा में देवनगरी के समान प्रियकरा नगरी है। वही हमारी जन्मभूमि है। वहाँ महिपाल राजा सुख पूर्वक राज्य करता है। उसे अत्यंत सुन्दर लावण्ययुक्त, गुणवान पद्मश्री नाम की पुत्री है। वह राजकुमारी दो तपस्विनियों के पास विद्याभ्यास कर सब कलाओं में कुशल हो गई है। पंडितों से वृतान्त सुनकर मंत्री ने हर्षित होकर राजा को सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया। राजा तुरन्त राजकार्य मंत्री के सुपुर्द कर अकेला ही उस नगरी को रवाना हुआ। कुछ दिनों बाद राजा प्रियकरा नगरी के उद्यान में पहुँचा। वहाँ उसने उद्यान में एक महल देखा। उसमें दो तपस्विनियों के पास एक अप्सरा के समान रुपवाली राजकन्या को देख के अत्यंत हर्षित हो प्रियमूर्ति के दर्शन कर अपने को धन्य मानने लगा इसके बाद राजा ने घोड़े को एक वृक्ष के नीचे बाँध तपस्विनियों के पास जाकर विनय पूर्वक प्रणाम कर बैठ गया। इतने में तपस्विनी बोली हे भाग्यशाली ! तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ? और यहाँ कैसे आना हुआ है ? यदि आपत्ति नहीं हो तो मुझे बतलाओ।

राजा-देवी मैं पद्मावती नगरी में रहता हूँ। तीर्थयात्रा करने निकला हूँ। यहाँ आकर आपकी कीर्ति सुनकर आपके दर्शन करने आया हूँ।

राजा के मधुर और विनय युक्त वचन सुनकर तपस्विनी बहुत प्रसन्न हुई। फिर राजा को भोजन करा उद्यान में मंद २ शीतल पवनयुक्त वृक्षों के कुञ्ज में आराम करने को कहा। राजा को वहाँ जाकर सोते ही नींद आगई। इतने में कोई विद्याधर उधर होकर निकला और उसकी दृष्टि सोते हुए राजा पर पड़ी। उसे देखकर वह विचारने लगा कि इस कामदेव समान पुरुष का देखकर कहीं मेरी स्त्री आसक्त न हो जाय। ऐसा विचार कर राजा के एक हाथ मे कोई जड़ी बांध दी जिससे वह मनोहर स्त्री रुप मे बदल गया। इसके बाद थोड़ी देर मे विद्याधर की स्त्री वहाँ आई उसने इस सुन्दरी को देखकर सोचा कि कहीं मेरा पति इसे देखकर इस पर मोहित न होजाय। ऐसा सोच उसने राजा के दूसरे हाथ पर कोई जड़ी बाँध दी जिससे वह स्त्री फिर युवान कामदेव समान रुपवालापुरुष बन गया। इसके कुछ बाद राजा ने जागृत हो अपने हाथ में बंधी हुई एक जड़ी खोली और वह वापस विद्याधर बंधी हुई जड़ी के प्रभाव से स्त्री रूप में हो गया। ऐसा आश्चर्य देखकर दूसरी जडी दूसरे हाथ से खोली तो फिर वह असली रूप में हो गया। जड़ियों का यह अपूर्व प्रभाव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उन जड़ियों को गुप्त रख राजा तपस्विनी के पास आया। तब उसने पूछा हे वत्सतू देखने में राजा के समान मालूम होता है इसलिये बिना किसी शंका व भय के जो सत्य बात हो वह बतला दे।

राजा—देवी आपका आग्रह है तो मैं सत्य बात बतलाता हूँ। मैं पद्मावती नगरी का राजा हूँ। एक दिन स्वप्न में आपकी

एक दिन रात्रि को बातचीत करते समय राजा ने राकुमारी को पूछा कि तू पुरुषद्वेषिणी होकर अपने यौवन को क्यों निष्फल करती है।

राजकुमारी- हे सखी! मुझे जातिस्मरण ज्ञान होने से पुरुष पर द्वेष करनेवाली हुई हूँ।

राजा—जातिस्मरण कैसे हुआ ? तब राजकन्या लज्जित होती हुई कहने लगी। किसी को मैथुन करते देखकर जाति-स्मरण हुआ। यह सुनकर राजा ने कहा—सखी यह बात मुझे सविस्तार बतला। इस पर कुमारी कहने लगी एक जंगलमें हस्ती का जोड़ा बड़े स्नेहपूर्वक रहता था। एक बार उस जंगल में दुर्भाग्य से महा भयङ्कर दावाग्नि लगी, जिससे सब पशु इधर उधर भागते हुए जहाँ हाथी का जोड़ा था वहाँ जाकर इकट्ठे होने लगे। उन जीवों पर दया आने से वह हाथी का जोड़ा वहाँ से दूसरी जगह गया। वहाँ भी दावाग्नि पहुच गई। इसलिये हाथी हथिनी को छोड़ कर कहीं और चला गया और हथिनी पुरुष जाति को धिक्कारती हुई अनुकंपा के भाव से जल कर मैं यहाँ राजकन्या हुई हूँ। हे सखी इस कारण मैं पुरुष के स्वार्थी स्नेह का विचार कर ब्याह नहीं करना चाहती।

इस प्रकार राजकुमारी पूर्व भव को सुन राजा को भी जाति स्मरण हुआ। पीछे थोड़ी देर दूसरी बातचीत कर सुलोचना रूप राजा ने तपस्विनी के पास आकर सारा वृतान्त कहा। पीछे

राजा के कहने से तपस्विनी ने राजकन्या और राजा के पूर्वभव का चित्र तैयार किया जिसमें एक जंगल में भयंकर दावानल लगा हुआ है, बहुत से जंगली जीव इधर उधर भागते हुए अग्नि में जल कर मर रहे हैं। इनमें एक हाथी का जोड़ा था जिसमें हथिनी अग्नि की ज्वाला से तड़फ रही थी और हाथी नजदीक के सरोवर से शीतल जल लाकर बार २ डालता था। परन्तु अंत में वहमर जाती है। स्नेह के कारण हाथी भी अग्निमें गिर कर मर जाता है। इस प्रकार का चित्र एक आदमी के हाथ में देकर नगर में भेजा। उस चित्र को देखकर जो उसके बारे में पूछता तो वह इस प्रकार कहता कि पद्मावती नगरी के राजा पुरुषोत्तम को जाति स्मरण हुआ है और पूर्वभव की पत्नि को प्राप्त करना चाहता है, उसी का यह चित्र है।

उस आदमी को नगर में घूमते हुए राजकुमारी ने देखा इसलिए उसको बुलाकर सब हाल पूछा। उस आदमी ने पहले के अनुसार सारी बात कह सुनाई। इससे पुरुष द्वेष राजकुमारी के मन से दूर हो गया और पुरुषोत्तम राजा से अनुराग करने लगी। यह बात राजकुमारी के पिता को मालूम हुई जिससे उसने खुशहो कर विवाह की तैयारी कर बहुत से मनुष्यों के साथ पद्मावती नगरी भेजने का प्रबंध किया। राजकुमारी माता पिता व तपस्विनी को प्रणाम कर सब का आशीर्वाद लेकर पद्मावती नगरी को चल दी। अब पुरुषोत्तम राजा भी तापसी को नमस्कार कर अपनी मनोकामना पूर्ण हुई जान स्त्री रूप में ही राजकन्या के साथ अपने

नगर को रवाना हुआ । कुछ ही दिनो में वे पद्मावती नगरी के उद्यान में आकर ठहरे । वहा से सध्या को चुपचाप स्त्री वेष छोड़कर पुरुषोत्तम राजा महल में गया । राजा के आगमन की सूचना मिलने पर नगर के सेठ, सामत, मंत्री वगैरह नमस्कार करने आये । पीछे राजा ने सारा वृतान्त मत्री को बतलाया और शुभ मुहुर्त देख उत्तम लग्न में राजकुमारी पद्मश्री के साथ बडे ठाटबाट के साथ शादी की ।

कुछ समय आनन्द सहित विषय सुख भोगते हुए रानी ने सिंह स्वप्न सूचित गर्भ धारण किया । नौ मास पूरे होने पर पुत्र हुआ । राजा ने बडे हर्ष पूर्वक जन्मोत्सव किया । पुत्र का नाम पुरुषसिंह रखा । बडे लाड़ प्यार से पालित विद्याभ्यास कर सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर यौवन अवस्था में पहुचा । इसलिये राजा ने उत्साह से आठ राजकुमारियो के साथ राजकुमार की शादी कर दी । इस प्रकार राजा अपने आपको सुखी मानने लगा परन्तु सब की स्थिती कभी एक समान नहीं रहती है । अब धीरे २ राजा का भाग्य चक्र उलटा चलने लगा । पूर्व कर्मवश रानी के शरीर में दाहज्वर की महावेदना उत्पन्न हुई । उसी वेदना से रानी की मृत्यु हो गई । रानी पर अधिक स्नेह होने के कारण राजा खाना पीना, राजकाज छोड़कर रातदिन रोने लगा । उस समय इस नगरी के उद्यान में चार ज्ञान को धारण करने वाले परमोपकारी श्रीदेव मुनिश्वर पधारे । उनको नमस्कार करने के लिये नगर के सब लोग जानेलगे । राजा भी मंत्री सहित आकर गुरु वदन कर

विनय पूर्वक उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय करुणासागर मुनिराज धर्मदेशना देने लगे।

"हे भव्यजीवों ! मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और धर्मश्रवण का योग मिलने पर भी जो प्राणी अनन्त सुख देनेवाले धर्म में चित नहीं लगाता वह बारबार दुःख से भरे चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। संसार में एक भी ऐसी योनि नहीं है जिसमें यह जीव अनन्त बार जन्मा व मरा न हो। यह जीव कर्म वश मनुष्य जन्म प्राप्त कर पौद्गलिक सुख की इच्छा में आसक्त होकर मनुष्य जन्म ऐसे हीं खो देता है। इस जीव ने पौद्गलिक सुख को अनन्त वार भोगा है फिर भी इसको तृप्ति नहीं हुई। वास्तविकता में इस पौद्गलिक सुख को सच्चा सुख नहीं कह सकते क्योंकि जिस तरह किंपाक का फल खाने में मीठा होता है परन्तु अन्त में दारुण दुःख देनेवाला होता है। ऐसे दुखगर्भित सुख में गुणीजन क्यों आसक्त होता है? संसारिक सुख क्षणिक और असार है इसलिये उसका त्याग कर अनन्त सुख को देने वाले जैन धर्म में रुचि रखना चाहिये। धर्म दो प्रकार का है— एक पंच महाव्रत रूप श्रमण धर्म जिससे मोक्ष सुख प्राप्त होता है। दूसरा सम्यकत्व मूल श्रावक के बारह व्रत रूप धर्म है जिससे उत्कृष्ट बारहवे देवलोक का सुख प्राप्त होता है। इस तरह अनेक भवोपार्जित कर्म का नाश कर अक्षयसुख को देखनेवाले धर्म का चिंतन करो।"

गुरु की धर्म देशना श्रवण कर राजा को प्रतिबोध हुआ और कहने लगा—हे करुणानिधि ! इस अनन्त संसार में भ्रमण कर अनेक जन्म मरण के दुःख से भय पाकर मैं आपकी शरण में आया हूं इसलिये मुझे इस दुःख से मुक्त करनेवाला चारित्र ग्रहण करने की आज्ञा दो ।

गुरु–हे देवानुप्रिय ! तुमको जिससे सुख मिले वैसा करो ।

पीछे गुरु की आज्ञा लेकर नृपति राजमहल में आकर सातों क्षेत्र में खूब द्रव्य व्याय कर पुरुषसिंह राजकुमार को राज पदवी पर स्थापन कर मंत्री सहित महोत्सव पूर्वक देव मुनिश्वर से चारित्र लिया । गुरू के पास सब क्रिया सीख समिति गुप्तयुक्त निरतिचार से चारित्र पालन कर नव पूर्वधर हुए ।

एक दिन अप्रमत्त राजर्षि मुनि शुभ ध्यान में रहकर इस प्रकार विचार करने लगे–अहो ! सम्यगज्ञान रूप चक्षु को देनेवाले, दुर्गति से तारने वाले गुरू से करोड़ उपाय करने पर भी उऋण नहीं हो सकते । माता, पिता, पुत्र, मित्र और स्त्री वगैरह तो सिर्फ इस भव में अपने स्वार्थ के खातिर ही उपकार करते हैं परन्तु गुरु महाराज तो निःस्वार्थ भाव से उपकार करनेवाले हैं इसलिये सच्चे माता पिता तो गुरु महाराज हैं । इस प्रकार विचार कर अपने मन में अभिग्रह धारण किया कि आज से मुझे नित्य गुरुजन की भक्ति करना । ऐसा अभिग्रह लेकर निरंतर अस्खलित भाव से गुरु की तैंतीस अशातना टालकर गुरु के छत्तीस गुणों का चिन्तन कर अपने मुंह से दूसरों के सामने गुरु के गुणों का

कीर्तन करते हुए उत्कृष्ट पुन्योपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने पुरुषोत्तम मुनि की प्रशंसा कर कहा कि—वर्तमान संसार में भरत क्षेत्र में मुनि गुणों में विभूषित पुरुषोत्तम राजर्षि के समान गुरु भक्ति करने वाला दूसरा नहीं है। इस प्रकार मुनि की प्रशंसा सुन कोई ईर्षालु मिथ्या दृष्टि देव उन मुनि की परीक्षा करने के लिये मुनि का रूप धारण कर पुरुषोत्तम मुनि के पास आकर उनके अनेकों दोष बताने लगा और कटु वचन से वाक्य प्रहार कर भर्त्सना करने लगा। फिर भी समता सिंधु राजर्षि मुनि जरा भी खेद नहीं करते हुए अपनी निंदा सुनते हुए गुरुभक्ति भाव से जरा भी विचलित नहीं हुए। इस प्रकार दृढ़ चित्तवाले मुनि को देख देव प्रगट होकर मुनि की तीन प्रदक्षिणा नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा माँग कर देवलोक में चला गया। राजर्षि मुनि अभिग्रह का पालन करते हुए अन्त मे एक मास का अनशन कर अच्युत कल्प में महा समृद्धिवाले देव हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।



पाँचवी कथा

श्री पद्मोतर राजा

जो पाँचवे स्थिविर पद की आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र में महान् समृद्धिशाली वाराणसी नगरी थी। वहाँ सूर्य के समान प्रतापी, स्वरूपवान राजा पद्मोत्तर न्याय-युक्त सुख पूर्वक राज्य करता था। यहा से कुछ दूर अतिशय मनोहर शुभापुरीनगरी में राजा जयराज राज्य करता था। उसके देवागना के समान रूपवती पद्मिनी और कुमुदिनी दो सर्वगुणसम्पन्न पुत्रियाँ थीं। गजपुर नगर में सिंहरथ राजा राज्य करता था। उसके भोगवती और विभ्रमवती दो पुत्रियाँ थीं। ये चारों राजकुमारियाँ किसी चित्रकार के पास पद्मोत्तर राजा का चित्र देख उससे अनुराग करने लगीं। माता पिता की आज्ञा से एक साथ पद्मोत्तर राजा के साथ ब्याह किया। राजा भी उन के साथ स्नेहपूर्वक सुख भोगते हुए समय व्यतीत करने लगा।

एक बार कौशल देश के सुग्रीव नाम के कामान्ध राजा ने पद्मोत्तर राजा की चारों रानियो के अद्भुत रूप की प्रशसा

सुनकर दूत भेज कर पद्मोत्तर राजा को कहलाया कि महाराज सुग्रीव तुम्हारी रानियों पर मोहित हो गया है इसलिये उनकी आज्ञानुसार अपनी रानियों को कौशलाधिपति के सुपुर्द कर उनके कृपाभाजन बनो। दूत की यह बात सुनकर पद्मोत्तर राजा क्रोधित हो कहने लगा—हे दूत यहाँ से चला जा। तेरे निर्लज्ज दुर्बुद्धि राजा को तो कहलाते शर्म नहीं आई परन्तु तुझे भी ऐसा कहते मृत्यु का डर नहीं लगा ! तू दूत होने के कारण अवध्य है इसलिये जीता छोड़ता हूँ। तू जाकर तेरे कामान्ध अविवेकी राजा को कहनाकि सोते सिंह को छेड़कर क्यों अपने प्राण गंवाता है। कामान्ध होने के कारण वह बिचारा हृदय से भी शून्य हो गया है और इसीलिये वह दया का पात्र है। उसे कहना कि वह अपनी मूर्खता की क्षमा माँग ले नहीं तो इस मूर्खता का फल उसे भोगना पड़ेगा।

इस प्रकार पद्मोत्तर राजा के वचन सुन दूत ने अपने स्वामी के पास आकर सारा हाल कह सुनाया। दूत के द्वारा उत्तर सुनकर राजा सुग्रीव ने क्रोधित हो अपनी सेना लेकर पद्मोत्तर राजा पर चढ़ाई करदी। पद्मोत्तर राजा भी अपनी सेना लेकर लड़ने आया। विशाल मैदान में दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। अंत में सुग्रीव राजा हार कर भाग गया। पद्मोत्तर राजा विजय प्राप्त कर बड़े महोत्सव पूर्वक अपने नगर में आकर सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन राजा राज्य सभा मे बैठा हुआ था। उस समय इन्द्र शर्मा नाम का इन्द्रजालिया मनोहर देव समान रूपधारण कर साथ मे एक अनुपम स्वरूपवान लावण्यमयी नवयौवना युवती को लेकर सभा में आया और प्रणाम कर खड़ा रहा। उसको राजा ने आदर पूर्वक कहा—हे वीर पुरुष! तू कौन है? तेरे साथ यह सुन्दरी कौन है? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?

इन्द्रजालिया सिर झुका कर कहने लगा—हे राजन! मे मणि प्रभ विद्याधर हूँ और यह मेरे प्राणो से अधिक प्रिय मेरी पत्नि है। यह एक दिन अपनी सखियों के साथ क्रीडा करने जा रही थी उस समय मेरे शत्रु वज्रदाह विद्याधर ने इसका हरण किया। मुझे खबर होते ही उसके साथ युद्ध कर अपनी स्त्री को लेकर यहाँ आया हू। परन्तु वह दुष्ट फिर अत्यन्त क्रोधित हो मुझे मारने के लिये आरहा है। इस लिए मै अपनी स्त्री को आपकी शरण में रखन आया हूँ। लोगों के मुंह से सुना है आप पर नारी सहोदर है इस लिए आप के पास छोड़ने आया हूँ। मैं जबतक दुश्मन को जीतकर पीछा नहीं आऊँ तब तक इसकी रक्षा करेंगे ऐसी आशा है। मैं थोड़ी ही देर में आपकी कृपा से अपने शत्रु को मार कर आ जाऊँगा। ऐसा कह क्षण में वह आकाश मार्ग से अदृश्य हो गया और सब सभासद चकित हो उसकी तरफ देखते ही रह गये। -

थोड़ी देर में आकाश से एकदम दो कटे हुए पैर राज सभा में आकर गिरे। इसके बाद दो हाथ कटे हुए गिरे। इस तरह शरीर के सब अवयव कटे हुए गिरपड़े। यह देखकर सब चकित हो गए। उन अवयवों को पहचान कर विद्याधर की स्त्री जोर जोर से रूदन करती हुई बोली—हाय! हाय नाथ! मुझे अभागी के लिये आपने निर्दयी शत्रु से लड़कर प्राण त्याग किये। अरे नाथ! दुष्ट के साथ लड़ने से तो मुझ हत-भगिनी का ही नाश होने देते तो अच्छा होता। हे प्राणनाथ! अब में आपके बिना जीकर क्या करू? में भी आपके पीछे आती हूँ। इस तरह रोती हुई राजा से कहने लगी—महाराज। मैं भी पति के साथ सती होना चाहती हूँ। क्योंकि कुलीन और सती स्त्री का बाद में जीना व्यर्थ है। इसलिये मेरे पति के अंग के साथ मेरा भी अग्नि संस्कार करो जिससे मैं जल्दी अपने पति से जाकर मिलूँ। राजा आदि सभासदों ने उसे बहुत समझाया परन्तु उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। इस लिये राजा ने सबको सलाह से अवयवों के साथ स्त्री का अग्नि संस्कार कर दिया। फिर शोक पूर्ण हृदय से सभा में आकर बैठा था कि इतने में आकाश से प्रफुल्लित होता हुआ पूर्वोक्त विद्याधर (इन्द्रजालिया) राज्य सभा में आकर राजा को नमस्कार कर कहने लगा। हे सत्यमूर्ति नराधीश! मैं आपके

प्रताप से मेरे शत्रु का नाश कर निर्विघ्नता से आपके पास आया हूँ। अब आप मेरी प्राण प्रिया सुलोचना को वापिस मुझे दे दीजिये। इन्द्र जालिया को अचानक आया देख व उसके पूर्वोक्त वचन सुन राजा स्तब्ध हो कुछ भी उत्तर दिये विना भूमि की तरफ दृष्टि कर बैठा रहा। राजा को इस प्रकार बैठे देखकर पुन इन्द्र जालिया बोला—हे नरपति! आप विना कुछ कहे उदास होकर क्यों बैठे हो? क्या मेरी सुन्दर स्त्री को देखकर आपके मन में पाप पैदा होगया है?

ऐसे कटु वचन सुनकर राजा मस्तक ऊँचा कर बोला—हे विद्याधर! आप ऐसा न कहें। आपकी स्त्री मेरी बहिन के समान थी वह आपके कटे हुए अवयवो को देखकर उसके साथ जलकर भस्म हो गई है।

राजा की बात सुन कर इन्द्रजाली पुन कहने लगा-हे नृपति! सत्पुरुष प्राणान्त कष्ट होने पर भी सत्य से विचलित नहीं होते। यह पृथ्वी सत्यवान पुरुषों के सत्य पर ही टिकी हुई है। लोग आपको सत्यवादी कहते हैं। क्या आप अपने सत्य से भ्रष्ट हो गये हैं? अरे स्त्री को देखकर कौन चलाय मान नहीं होता? राजा आपकी बुद्धि भ्रष्ट होगई है।

इन्द्रजालिया के तीक्ष्ण तीर समान वाक्य सुनकर राजा का दिमाग घुमने लगा और मस्तक पर हाथ लगा नेत्र बन्द

कर चिन्ता करने लगा। इस तरह राजा को शोक पूर्ण देखकर जली हुई स्त्री अचानक प्रगट होकर अपने पति के पास खड़ी हो गई। उसे अचानक प्रगट हुई देकर सब विस्मित होगये। तब राजा ने इन्द्रजालिया से कहा कि आपने यह सब हमको दुःखी करने के लिये क्यों किया। तब उसने जवाब दिया कि हे राजा तेरे को प्रतिबोध देने के लिये इस इन्द्रजाल की रचना की थी। जैसे यह सब इन्द्रजाल असत्य है वैसे ही ये सारे पदार्थ जो दिखाई देते हैं वे सब क्षण भंगुर और नाशवान हैं। यह विशाल राज्य, अनुपम सौन्दर्य वाली मनोहर स्त्रियाँ सब नाशवान है। सब लोगों का त्याग ही सुख को देनेवाला है। यदि हम इनको नहीं छोड़ते तो ये किसी समय हमको छोड़कर दुःख देंगे। इसलिये इन पर मोह करना व्यर्थ है। इंद्रजालिया के ऐसे बचन सुन राजा को ज्ञान हुआ और उसे एक करोड़ सोना मोहर देकर बिदा किया।

दूसरे दिन उसी नगरी के उद्यान में आचार्य देवप्रभु बहुत मुनियों के साथ पधारे. नगर में खबर होते ही सब पुरवासी राजा वगैरह गुरु को वन्दना करने गये। उन में आकर राजा विनय सहित तीन प्रदक्षिणा दे गुरु को वन्दना कर उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरू महाराज ने धर्म देशना शुरू की।

'हे भव्य आत्माओं! जो कोई प्राणी लज्जा, भय, तर्क वितर्क, मात्सर्य स्नेह, लोभ, हठ, अभिमान, विनय, शृंगार,

कीर्ति, दुःख कौतुक, आश्चर्य, व्यवहार भाव, कुलाचार, और वैराग्य से धर्म का सेवन करता है, उसे अपार फल की प्राप्ति होती है। यदि धर्म श्रवण करा हो, देखा हो, किया हो, कराया हो और अनुमोदन किया हो तो अपार सुख प्राप्त करता है। इसलिये हे भव्य प्राणियों धर्म में रुचि रखो।

गुरु की देशना सुन राजा को वैराग्य भावना पैदा हुई और दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका गुरू से बोला—हे करुणा निधान मुझे यह, मनोहर स्वरुपावन स्त्रियाँ और प्रताप किस पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुए है कृपा कर बतलाइये। गुरू ने कहा—हे राजा तू पूर्व भव में नन्दनपुर नगर में शङ्ख नामक सेठ के यहाँ नन्दन नाम का नौकर था। एक दिन तू मनोहर खिला हुआ कमल लेकर सेठ के घर जारहा था कि इतने में किन्हीं चार कुमारियों ने उस कमल को देखकर कहा कि ऐसा सुन्दर फूल तो वास्तव में जिनेश्वर की पूजा के योग्य है। कन्याओं के ऐसे वचन सुन प्रसन्न होता हुआ कन्याओं से बोला कि जो तुम कहती हो वह सत्य है। यह कमल जिनेश्वर की पूजा के योग्य ही है। ऐसा कह स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अत्यन्त भाव पूर्वक श्री देवाधि देव परमात्मा की पूजा कर वह कमल का फूल चढ़ाया। इसीलिये कहा है कि—

श्रेयस्तनोति दुरितानि निराकरोति,
लक्ष्मी करोति शुभ संचय मातनोति।

पूज्यत्व मानयति कर्मरिपून्निहन्ति,
पूजा जिनस्य रचिता जिनभावसारं ॥

अर्थ–अपनी उत्कृष्ट भावना से की गई श्री जिनेश्वर की पूजा कल्याण करनेवाली है, पापों को दूर करनेवाली है, लक्ष्मी की वृद्धि करनेवाली है, पुण्य संचय में वृद्धि करती है, पूज्यता बढ़ाती है और कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करती है। इस तरह भाव पूर्वक भगवान की पूजा अनेक उत्तम फल को देने वाली है। उन चारों कन्याओं ने भी जिनेश्वर भगवान की पूजा का अनुमोदन किया। उस पुण्य के प्रभाव से तू यहाँ राजा हुआ और वे सारी कुमारियाँ तेरी रानियाँ हुई।

गुरु से पूर्व भव सुनकर राजा को जातिस्मरण ज्ञानहुआ और वैराग्य भावना लेकर राजमहल में आकर अपने पुत्र पद्मशेखर को राजगद्दी दे नगर के सारे जिन चैत्यों में अट्ठाई महोत्सव कर चारों स्त्रियों सहित गुरू से चारित्र अङ्गीकार किया। धीरे धीरे राजर्षि मुनि ने विधि सहित गुरू से ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। एक दिन गुरू के मुंह से वृद्धों की भक्ति का महत्व सुना कि जो कोई वय, पर्याय और सूत्रार्थ से वृद्ध हो तथा तपस्वी हो ऐसे मुनि की निष्कपट और निरभिमान होकर जो भक्ति करता है वह अपनी आत्मा को निर्मल कर उच्च गोत्र का बन्धन कर तीर्थङ्कर पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार गुरू से स्थविर की भक्ति का महत्व सुनकर राजर्षि मुनि ने यह अभिग्रह किया कि जब तक मैं जीऊँगा तब तक

निरन्तर ज्येष्ठ अणगार को आहार आदि से भक्ति करने के बाद भोजन करूँगा। यह दृढ़ अभिग्रह लेकर निरन्तर वृद्धि साधुओं की भक्ति करने लगा जिससे सब मुनि उसकी प्रशंसा करते हुए आदर सत्कार करने लगे।

एक दिन देव सभा में इन्द्र महाराज से राजर्षि मुनि की प्रशंसा सुन रत्नागद सम्यग् दृष्टि देव भी प्रसन्न होकर इन्द्र का अनुमोद करने लगा। परन्तु दूसरे हैमागद मिथ्या दृष्टि देव को यह बात अच्छी नहीं लगी। इस पर वहाँ से दोनो मनुष्य रूप धारण कर जहाँ राजर्षि मुनि थे वहाँ आये। वहाँ आकर उनमें से एक कहने लगा कि जगत म दुष्कर तप करने वाले, ब्रह्मचारी तथा निर्मल जल में स्नान कर जगल में रहने वाले ममता रहित योगियों को देखकर हृदय प्रफुल्लित होता है और इन शौचाचार रहित बाह्य और अभ्यन्तर से मलीन जैन मुनि को देखते ही अप्रीति उत्पन्न होती है। यह सुन कर दूसरा देव हसकर बोला हे भाई! तू मूर्ख मालूम होता है क्योंकि क्षमादिक गुणो से युक्त जैन मुनि को सम्पूर्ण रीति से जाने बिना अज्ञान कष्ट करनेवाले तपस्वियों की तू प्रशसा करता है, यह तेरी मूर्खता है। इस एक की निन्दा और दूसरे की स्तुति सुनकर भी राजर्षि मुनि दोनों पर रागद्वेष रहित समभाव से रहे—पीछे वे दोनों देव दूसरा रूप धारण कर एक शिव पथी तपस्वी के पास आये। उनमें से एक बोला यह तपस्वी पशु की तरह भक्ष्याभक्ष्य का खयाल नहीं रखता और

स्त्री रखता है इसलिये इसका तप मिथ्या है। उसके ऐसे वचन सुन तपस्वी क्रोधित हो उसे मारने को दौड़ा तब रत्नांगद देव हेमांगद से कहने लगा कि हे मित्र जैन और शैवई मुनि में कितना भेद है यह तुमने देखा। इतने पर भी मिथ्या-दृष्टि देव के हृदय में श्रद्धा नहीं हुई। इसलिये पुनः उन राजर्षि मुनि पर देवमाया से बहुत से उपसर्ग किये फिर भी करुणासागर मुनि अपने लिए हुए अभिग्रह से चलायमान नहीं हुए। तब वे दोनों देव प्रत्यक्ष प्रगट हो मुनि को नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा याचना कर अपने अपने स्थान पर गये। पद्मोत्तर मुनि ने वृद्ध साधुओं की भाव पूर्वक भक्ति करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बँध किया। वहाँ से काल धर्म प्राप्त कर महा शुक्र देवलोक में देवता हुए। वहाँ से चलकर महा विदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।



छट्ठी कथा

राजा महेन्द्रपाल

जो छट्ठे बहुश्रुत पद की आराधना से तीर्थङ्कर हुए

भरतक्षेत्र में सोपारकपट्टण नगर था, जहाँ सर्व कलाओं में कुशल महेंद्रपाल राजा राज्य करता था। परन्तु सद्गुरु के

तीर्थ की यात्रा कर नर्मदा की मिट्टी का शरीर पर लेप करने से पाप दूर होता है। किसी ने कहा हवन कर वेद पुराण की कथा सुनने से पाप का नाश होता है। किसी ने कहा ब्राह्मणों को दान देने से किये पापों का नाश हो जाता है। इस प्रकार पंडितों ने पाप निवारण के उपाय बताये परन्तु राजा को इनमें से कोई भी पसन्द नहीं आया। उस समय नगर के बाहर उद्यान में श्रीषेण मुनिश्वर पधारे। राजा उनकी वंदना करने परिवार सहित गया। गुरु की विनय पूर्वक वन्दना कर दोनो हाथ जोड़ बोला—हे करुणानिधि! मन के पाप की शुद्धि किस प्रकार की जाय, इसका उपाय बताओ।

गुरु ने कहा शुद्धि दो प्रकार की है; बाह्य और अभ्यन्तर। जलादिक से शरीर की बाह्य शुद्धि होती है और ज्ञान, ध्यान तथा तप से अभ्यन्तर की शुद्धि होती है। जिसका चित्त काम वश स्त्री के मोह में फँसा हुवा हो ऐसे मनुष्यों की जलादिक से कभी भी शुद्धि नहीं हो सकती। अन्तर की शुद्धि तो ज्ञान और क्रिया से ही हो सकती है ऐसा जिनेश्वर ने कहा है। कहा भी है कि—

आलोचया निंदनगर्हणाभि, सम्यक् क्रिया बोध तपो भिरुग्रै।
तत्पापकर्मा सजतस्त्रिधापि, स्याद्धुविंशुद्धि खलु दुष्कृताना॥

अर्थ — मन, वचन, और काया इन तीनों से पाप करनेवाले मनुष्य के दुष्कर्मों की शुद्धि आलोचना, निंदा और गर्हा तीन

प्रकार से और सम्यक् क्रिया, ज्ञान व उग्र तप से दुष्कृत्यों की शुद्धि होती है ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं।

गुरु की ऐसी देशना सुनकर प्रधान के भाई श्रुतशील को वैराग्य हुआ और उसने चारित्र ग्रहण किया।

श्रुतशील के चारित्र लेने से राजा को गुरु पर द्वेष हुआ। गुरु राजा को प्रतिबोध देकर वहाँ से बिहार कर गये। पीछे एक बार उसी नगर के उद्यान में निर्दोष चारित्र का पालन करने वाले श्रुत केवली श्री समंतभद्राचार्य बहुत से साधुओं के साथ वहाँ पधारे उस समय सब पुरवासी और राजा उनकी वंदना करने आये। तब गुरु महाराज ने देशना दी।

'हे भव्यजनों! मदोन्मत्त हाथी, प्रचंड वेगवान घोड़े, विशाल राज्य लक्ष्मी, सुन्दर रूप, उत्तम वीर्य, मृगलोचनी सुन्दर स्त्री आदि भोगोपभोग्य वस्तुओं की प्राप्ति धर्म के प्रभाव से ही प्राप्त होती है। जो सुयोज्ञ शिरोमणी जिनेश्वर के कहे धर्म में रुचि रख दूसरों को भी प्रेरणा देता है वह प्राणी सुख सम्पदा को प्राप्त करता है; और जो मुढ़ आत्मा जिनेश्वर के धर्म को माननेवाले का अनादर कर उन पर द्वेष करता है वह अनेक प्रकार के दुःख को प्राप्त करता है। इसलिये जहां तक यह देह निरोग है, इन्द्रियाँ काम करती हैं, जरावस्था दूर है वहाँ तक धर्म कार्य में लगे रहने का यत्न करो।

ऐसी वैराग्य पूर्ण गुरु देशना श्रवण कर राजा ने जयन्त-कुमार को राजसिंहासन पर बैठा मंत्री सहित गुरु के पास से चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ गुरु के पास रहकर ग्यारह अंग का अध्ययन किया। एक दिन गुरुमुख से बीस स्थानक की आराधना सम्बन्धी देशना श्रवण करते हुए ऐसा सुना कि बीस स्थानको में से एक भी स्थानक की सम्यक् प्रकार से आराधना करने से तीर्थंकर पदवी मिलती है। वह गुरु वचन सुनकर राजर्षि मुनि ने अभिग्रह लिया कि जहाँ तक जाऊँगा वहाँ तक बहुश्रुत की सेवा करूँगा। ऐसा अभिग्रह लेकर बहुश्रुत मुनियों की औषध भैषज्य आदि से वैयावच्च करते हुए अभिग्रह का दृढ़ता से पालन करने लगा।

देवसभा में इन्द्र महाराज ने उन मुनि की प्रशंसा की। उस पर शंकित हो धनददेव जहाँ मुनि थे उस नगरी में आ सेठ बनकर रहने लगा। उस समय वे राजर्षि मुनि किसी बीमार साधु के लिये कोलापाक की तलाश में फिरते कपटी सेठ के घर आ धर्मलाभ देकर खड़े हुए। मुनि को देख कपटी सेठ खड़ा होकर प्रणाम कर मीठे वचनों से बोला कि आज मेरा धन्यभाग्य है कि आपने पधार कर मेरा घर पवित्र किया। हे पूज्य! कहिये आपको क्या चाहिये?

मुनि ने कहा—हे महाभाग मुझे कोलापाक की जरूरत है।

सेठ ने कहा—महाराज मेरे घर में कोलापाक है। आप ठहरिये मैं अभी लाता हूँ। ऐसा कह अन्दर से कोलापाक लाकर मुनि को देने लगा। मुनि ने उसे अनिमेष नेत्रवाला देख सोचा कि यह तो कोई मायावी देव है और देवपिंड मुनि ग्रहण करते नहीं। ऐसा सोच पाक लिए बिना वहाँ से दूसरी जगह चले गए। इससे वह देव क्रोधित हो जहाँ २ मुनि जाते वहाँ २ पाक को अशुद्ध कर देता। फिर भी मुनि को खेद नहीं हुआ। बहुत घर फिरते २ सूरसार्थवाह के यहाँ मुनि गये। वहाँ उसे शुद्ध पाक मिला। वहाँ से पाक लेकर मुनि अपने स्थान पर गये। इस तरह मुनि को अपने अभिग्रह में निश्चल देख देव ने प्रगट हो मुनि की स्तवना कर सूर सार्थवाह के घर रत्नों की वृष्टि कर अपने स्थान पर गया। बहुश्रुत की भाव पूर्वक सम्यक् प्रकार से सेवा करने से मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहाँ से काल धर्म प्राप्ति कर नवमें देवलोक में देवता हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। श्रुतशील मुनि का जीव उन्हीं तीर्थंकर का गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

इस प्रकार महेन्द्रपाल नृपति का चरित्र श्रवण कर हे भव्यजीवो तुम भी बहुश्रुत की भक्ति करने के लिये प्रयत्न करो।



सप्तम कथा

शेठ वीरभद्र

जो सातवें तपस्वी स्थानक पद के आराधना से तीर्थंकर हुवे

अवन्ती देश में अलकापुरी के समान विशाला नाम की नगरी थी। उस नगर में धनाढ्य वृषभदास सेठ रहता था। उसके रूपवती व गुणवान वीरमती स्त्री तथा वीरभद्र पुत्र था।

बालक वीरभद्र धीरे २ सब कलाओं में कुशल होकर यौवनावस्था में पहुँचा। वीरभद्र के रूप और गुण की प्रशंसा पद्मिनी खंड पत्तन में रहनेवाले पुण्यात्मा सेठ सागरदत्तने सुनी। इसलिये उसने अपनी पुत्री प्रियदर्शना का विवाह उसके साथ करने के लिये आदमी के साथ संदेश भेजा। सेठ ने उचित घर समझ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बाद में शुभ मुहूर्त में उत्साह पूर्वक प्रियदर्शना के साथ लग्न कर दिया। कुछ दिन श्वसुर के घर आनन्द पूर्वक रहने के बाद वीरभद्र ने अपने घर जाने की आज्ञा मांगी। तब सेठ ने कहा कि मुझे अपनी पुत्री प्रियदर्शना से अधिक प्रेम है इसलिये आप अपने साथ आए हुए आदमियों को भेज दो और

आप यहीं रहो। ससुर की बात सुन उसने अपने साथ आए हुए आदमियों को विदा किया और कहा कि मैं कुछ दिनों बाद अपनी स्त्री सहित आऊँगा क्योंकि सेठ का बहुत आग्रह है और मैं उनके दिल को दुखाना नहीं चाहता। कुछ दिन बीतने पर वीरभद्र ने सोचा कि जो पुरुष सुसराल में और स्त्री पीयर में ज्यादा रहते हैं वे अपनी शोभा व लाज खोते हैं। इसलिये अब मुझे यहाँ ज्यादा नहीं रहना चाहिये। परदेश जाकर द्रव्य संचय कर पिता के घर जाना ज्यादा अच्छा है। यह विचार उसने अपनी स्त्री को बताया और कहा कि तुझे छोड़कर जाना मुझे अच्छा नहीं लगता है परन्तु बिना काम श्वसुर के घर रहना भी मुझे अच्छा नहीं लगता। इसलिये परदेश धन कमाकर आऊँ तब तक तु पिता के घर रह। मैं थोड़े दिन में आकर अपने पिता के घर ले जाऊँगा। इस प्रकार समझाकर और उसकी स्वीकृति ले वह अपने भाग्य की परीक्षा करने निकल पड़ा। घूमते २ वह सिंहल द्वीप पहुँचा। वहाँ किसी दिव्य गुटिका के प्रभाव से रूप बदल कर नगर में नाना प्रकार की कलायें करता हुवा घूमने लगा जिससे नगर के लोग उसे प्यार करने लगे। एक दिन घूमते २ वीरभद्र उस नगर के सेठ शंख की दुकान पर जाकर बैठा। सेठ उसे गुणवान, रूपवान, और बलवान देख आदर पूर्वक घर लाया और पुत्र की तरह रखा। अब वीरभद्र सुख पूर्वक रहने लगा।

उस नगर के राजा रत्नाकर की महा गुणवान, सब कलाओं में निपुण, अत्यंत रूपवती अनंगसुंदरी पुत्री थी। उसकी सेठ की पुत्री के साथ मित्रता थी। उससे राजकुमारी की प्रशंसा सुन वीरभद्र की इच्छा उसे देखने की हुई इसलिये उसने सेठ की पुत्री से कहा। सेठ की पुत्री ने कहा कि वहाँ स्त्रियों के सिवाय किसी को जाने का हुक्म नहीं है इसलिए कैसे ले जाऊँ।

वीरभद्र ने कहा इसमें क्या है? ऐसा कह गुटिका के प्रभाव से वह सुन्दर नव यौवना कन्या बन गई। इस प्रकार रूपपरिवर्तनकर सेठ की पुत्री के साथ राजमहल में राजकन्या के पास गया। नई स्वरूपवान अपरिचित महिला को देख राजकुमारी बोली हे सखी तेरे साथ देव सुन्दरी समान यह कन्या कौन है।

सेठ की पुत्री ने कहा—बहिन यह मेरे मामा की पुत्री है। हमारे घर थोड़े दिन के लिये मिलने आई है। इसे वीणा बजाना बहुत अच्छा आता है इसलिये मैं तुम्हारे पास लाई हूँ। तुम अपनी वीणा इसे दो। देखो यह कैसा मधुर गाती है। राजकन्या ने अपनी वीणा उसे दी। कृत्रिम कन्या ने वीणा हाथ में लेकर इस तरह बजाई कि उसके संगीत, ताल, आलाप को सुनकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हो कहने लगी कि बहिन तुम निरन्तर मेरे पास ही रहो तो ठीक है, क्यों कि तुमको देख मेरे मन में अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है।

राजकन्या के आग्रह से कृत्रिम कन्या वहाँ आनन्द पूर्वक विविध प्रकार से विनोद करती हुई रहने लगी। इस तरह दोनों का मन एक हो गया।

एक दिन कृत्रिम कन्या ने राजकुमारी से कहा कि हे सखी तू अब यौवनावस्था में पहुँच गई है इसलिये यदि तुझे तेरे रुप गुण समान पति मिल जाय तो अच्छा है।

राजकुमारी ने कहा—हे सखी सब को अच्छे वर की इच्छा होती है। कोई बुरे को नहीं चाहता। परन्तु इसमें अपनी इच्छानुसार होना कठिन है क्योंकि यह सब अपने २ शुभाशुभ कर्म के अधीन है कृत्रिम कन्या ने कहा कि हे सखी तेरा कहा सत्य है परन्तु तेरे रूप गुण के योग्य एक कुलवान पुरुष है। यदि तुझे पसन्द हो तो बताऊँ।

राजकुमारी ने कहा यहाँ कैसे बतायेगी ?

कृत्रिम कन्या ने कहा— अरे यहाँ ही बताऊँगी। देख यह रहा। ऐसा कह अपना असली रूप प्रगट किया। यह देख राजकुमारी आश्चर्य चकित हो विचारने लगी कि यह क्या कोई देवमाया है या इन्द्रजाल है। राजकन्या को भय में पड़ी देख वीरभद्र बोला हे नृप कुमारी! आप किस विचार में हो ? क्या यह पुरुष तुमको पसन्द है ?

राजकुमारी लज्जित हो सिर नीचा कर धैर्य पूर्वक बोली कि हे कुमार कृपा कर अपनी सच्ची पहिचान बताओ

जिसे सुनकर मैं भाग्यशाली होऊँ। वीरभद्र ने अपना परिचय दिया जिसे सुनकर खुश हो अपनी माता को बुला अपना अभिप्राय बतलाया। रानी ने राजा से कहा राजा ने खुशी से उत्साह पूर्वक शुभ दिन देख पुत्री का विवाह वीरभद्र के साथ कर दिया। वीरभद्र उसके साथ सुख भोगता हुआ वहाँ रहने लगा। एक दिन वह एकान्त में बैठ विचारने लगा कि—

उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता, मध्यमाश्च पितुर्गुणैः।
अधमा मातुलैः ख्याता, श्वसुरेस्त्वधमाधमः ॥१॥

अर्थः— अपने गुणो से जो विख्यात है वह उत्तम, पिता के गुणों से जो प्रसिद्ध है वह मध्यम, मामा के गुणो से जो जाना जाता है वह अधम और जो श्वसुर के कारण ख्याति पाता है वह अधमाधम है।

ऐसा विचार कर राजा को व शँख सेठ को आज्ञा के अपने देश जाने की तैयारी की। शुभ मुहुर्त व अच्छे शकुन देख बहुतसे मनुष्यो के साथ नाव में बैठा। पीछे नाव समुद्र में चलने लगी। कुछ दिनों बाद समुद्र बीच पहूँची। इतने मे दुर्दैववश दसों दिशाओं में प्रचड आँधी आई आकाश मेघों से आच्छादित हो गर्जन करने लगा, बिजली चमकने लगी और समुद्र हिलोरे लेने लगा। इससे नाव डाँवाडोल होने लगी। नाव के मनुष्य व्याकुल हो इष्टदेव का स्मरण करने लगे। प्रचण्ड तूफान के कारण अन्त में नाव के टुकडे २ हो गये और

सब मनुष्य समुद्र में गिर गये। सत्वकर्म के कारण राजपुत्री अनंगसुन्दरी के हाथ मे लकड़ी का तख्ता आया। उसके आधार से तैरती २ तीन दिन में समुद्र के किनारे जा पहुँची वहाँ एक तापस दया कर उसे अपने आश्रम में ले गया और पुत्री की तरह रखने लगा। अनंग सुन्दरी की सुन्दरता देखकर तापस विचारने लगा कि ब्रह्मचारी को स्त्री संग लाभदायक नहीं है। इसलिए कहा है कि

मदिराया गुणाज्येष्ठा, लोकद्वय विरोधिनी ॥
कुरुते द्रष्ट मात्रापि, महिला ग्रहिलं जगत् ॥१॥

अर्थः—स्त्री मदिरा से भी ज्यादा गुण करनेवाली तथा इस लोक और परलोक को बिगाड़ने वाली है एवम् देखने मात्र से जगत को पागल कर देती है। अर्थात् मदिरा पीने के बाद मनुष्य मस्त होता है परन्तु दोनों लोक को बिगाड़ने वाली स्त्री तो मदिरा से भी अधिक मादक गुणवाली है कि जिसे देखते ही जगत पागल हो जाता है।

जिस तरह आग के पास रहने से लाख एक क्षण में नाश हो जाती है उसी तरह समीप रहने वाले ब्रह्मचारी का शील भी थोड़ी देर में नष्ट हो जाता है। ऐसा विचारकर वह तापस अनंग सुन्दरी से कहने लगा कि हे पुत्री मैं तुझे पास के पद्मिनी खँड नाम के नगर के पास छोड़ आता हूँ। वहाँ से तु तेरा उचित स्थान ढूंढ़ लेना। तेरे पुन्य से तुझे वहाँ अच्छा स्थान ही मिलेगा

और तू सुखी होगी। तुझे अपने पास बहुत दिनों तक रखना लाभदायक नहीं है क्योंकि इससे मेरी अपकीर्ति होगी। ऐसा कह अनगसुन्दरी को नगर के समीप छोड़कर तापस पीछा अपने आश्रम में आगया।

झाड़ झाड़ से घबराकरा अनगसुन्दरी घुमती २ नगर के पास वाले सरोवर पर आई। वहाँ उसने पुण्यात्मा सुव्रता साध्वीजी को देखी। उसे देख हर्ष से उनके पास जा विनयपूर्वक वंदन कर दोनों हाथ जोड़ खड़ी रही। साध्वी जी ने धर्मलाभ दे मधुर वचन से पूछा पुत्री तू किसकी पुत्री और किसकी स्त्री है। राजकुमारी ने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया। साध्वी उसे पौषधशाला में ले गई। उसी समय सागरदत्त सेठ की पुत्री और वीरभद्र की स्त्री वहाँ पढ़ने आई। उसने उस अप्सरा समान रूपवती स्त्री को देख साध्वीजी महाराज से पूछा कि यह स्त्री कौन जी है।

साध्वीजी ने कहा यह स्त्री सिंहल द्वीप के राजा की पुत्री और वीरभद्र सेठ की पत्नी है। दुर्दैववशात यह अपने पति से अलग हो गई है।

यह सुनकर प्रियदर्शना बोली अरे यह तो मेरी सपत्नी—मेरी बहन है। ऐसा कह मीठे वचनों से उसे धीरज बँधा अपने पिता के घर लाकर स्नेह सहित बड़े आदर से रखी। दोनों गुरू के पास श्रुताभ्यास व विविध तपस्या करती शुद्ध चित्त से निर्मल शील

का पालन करने लगी। सागरदत्त सेठ भी अनंग सुन्दरी को अपनी दूसरी पुत्री की तरह मानता और जरा भी फरक नहीं समझता।

प्रिय पाठक ! अब वीरभद्र का क्या हुवा सो देखें। जब भयंकर तूफान से नाव टूटी और जिस तरह अनंग सुन्दरी के हाथ मे एक लकड़ी का तख्ता आया उसी तरह वीरभद्र के हाथ में भी एक तख्ता आया। उसके सहारे सात दिन में वह समुद्र के किनारे आकर बाहर निकला। परन्तु स्त्री के वियोग से किसी भी जगह उसे सुख शांति नहीं मिली। अस्वस्थ चित्त से इधर उधर फिरने लगा। इतने में वहाँ रत्नपुर नगर का स्वामी रत्नवल्लभ विद्याधर क्रीड़ा करता आ पहुँचा। वह वीरभद्र को व्याकुल देख बहुमान पूर्वक अपने साथ नगर में ले आया। वहाँ उसने अपनी पुत्री रत्नप्रभा का उसके साथ उत्साह पूर्वक व्याह कर गगन गामिनी तथा आभोगिनी विद्या सिखलाकर विद्याधर बनाया। सच है पुण्यशाली को जगह २ संपत्ति और सुख प्राप्त होता है।

कुछ समय बीतने पर एक दिन आभोगिनो विद्या के प्रभाव से निर्मल शीलयुक्त अपनी पूर्व को दो पत्नियों को सुव्रता साध्वी जी के पास पद्मिनी खंड नगर में शास्त्राभ्यास करती देखी। वह अपनी नवविवाहिता पत्नी को लेकर उस नगर में आया। वहाँ आकर स्त्री को सुव्रता साध्वी जी के उपाश्रय के पास छोड़

-खुद मल त्यागने के बहाने वहाँ से चला गया। कुछ समय व्यतीत -होने पर जब पति वापिस नहीं आया तो रत्नप्रभा चिंता करती -हुई वहाँ से उठकर सुव्रता साध्वी जी के उपाश्रय में जहा पूर्वोक्त दो स्त्रियाँ पढ़ती थी चली गई। उनके पास बैठकर अपना हाल सुनाया। उन्होंने उसे भी अपने पास रख ली। अब तीनों किसी अन्य पुरुष से बात किए बिना निरन्तर देवपूजा, प्रतिक्रमण पोषध आदि धर्म क्रिया करने लगी।

वीरभद्र अपनी स्त्री को छोड़ वामन रूप धारण कर सुलक्षण नाम धारण कर विविध प्रकार के कौतुक कर लोगों को प्रसन्न करता हुआ घूमने लगा। एक दिन इस प्रकार घूमता २ राजा की सभा में चला गया। वहाँ उस सभा में कोई पुरुष यह कह रहा था कि अपने नगर में सुव्रता साध्वीजी के उपाश्रय में अप्सरा के रूप के समान तीन सती स्त्रियाँ हैं वे ऐसी दृढ नियमवाला है कि पर पुरुष के सामने भी नहीं देखती तो फिर उसके साथ बातचीत करना तो दूर की बात है। वे सती स्त्रियाँ नवयौवना होने पर भी जितेन्द्रिय हैं।

ऐसी बात सुन राजा आश्चर्यान्वित हो बोला कि जो कोई पुरुष उन तीन स्त्रियो से बातचीत करेगा वह मेरा कृपा भाजन बनेगा।

राजा की आज्ञा सुनकर सभा में बैठे हुए किसी भी आदमी ने कुछ नहीं कहा। इतने में वहाँ आये हुए वामन पुरुष ने

प्रणाम कर कहा कि महाराज मैं अपनी कला से उनसे बात कर सकूँगा।

वामन की बात सुन राजा बोला चलो, अभी चलो। पीछे सब सभाषदों सहित राजा वामन को ले सुव्रता साध्वीजी के उपाश्रय में आकर आर्या की वंदना कर सब लोग अपने २ उचित स्थान बैठ गये। पीछे राजा की आज्ञा ले वामन बोला कि हे सभासदो मैं एक आश्चर्यजनक कहानी कहता हूँ सो सुनो। यह कह निम्न प्रकार से कहना शुरू किया।

विशालापुरी में रहनेवाले वृषभदास सेठ के वीरभद्र पुत्र था। उस वीरभद्र ने पद्मिनी खण्ड नगर में रहने वाले सागरदत्त सेठ की कन्या प्रियदर्शना के साथ शादी की। कुछ दिन उसके पास रह उसे वहीं छोड़कर परदेश चला गया। ऐसा कह वह चुप होगया। अपने पति की बात सुन प्रियदर्शना बोली बताओ पीछे वे कहाँ गये।

प्रियदर्शना को बोलती देख वामन बोला तीन में से एक स्त्री तों बोली अब बाकी बात कल बतलाऊँगा।

दूसरे दिन फिर सब उपाश्रय में गये और वामन ने फिर कहना शुरू किया प्रियदर्शना को छोड़ वीरभद्र घूमता २ सिंहलद्वीप गया। वहाँ के राजा की रूपवती कन्या अनँगसुन्दरी के पास दिव्य गुटिका के प्रभाव से स्त्री रूप बनकर गया और वीणा बजाकर खुशकर उसके साथ ब्याह किया। वहाँ से नाव में

बैठकर अपने घर के लिये रवाना हुवा । दुर्भाग्य से नाव टूट गई और सब समुद्र में गिर पड़े । इतना कह चुप होगया । इतने में राजपुत्री अनगसुन्दरी बोली कि हे कला कुशल जल्दी बताओ पीछे कुमार का क्या हुवा । इस तरह दूसरी स्त्री को बोलती देख बामन ने सभासदों से कहा कि देखा दूसरी स्त्री भी बोल गई । अब बाकी बात कल बताऊँगा ।

तीसरे दिन पुन सब उपाश्रय में इकट्ठे हुए । बामन ने कहना शुरू किया कि नाव टूट जाने पर वीरभद्र के हाथ एक लकड़ी का तख्ता लगा । उसके सहारे सात दिन में वह समुद्र के किनारे पहुँचा । वहाँ से रत्नवल्लभ विद्याधर नगर में लेगया और अपनी पुत्री रत्नप्रभा का विवाह उसके साथ कर दिया और दो विद्या उसे सिखाकर विद्याधर बनाया । एक दिन अपनी स्त्री रत्नप्रभा को लेकर वीरभद्र इस नगर में आया और उसे किसी जगह छोड़ कहीं चला गया । इतना कह वह चुप होकर बैठा रहा । इतने में रत्नप्रभा अधीर होकर पूछने लगी कि हे बामन जल्दी बताओ पीछे क्या हुवा और वे कहाँ गये और तुझे यह सारा हाल कैसे मालुम हुवा । बामन बोला कि मैं यह हाल अपने ज्ञान से जानता हूँ । इस ज्ञान से स्वर्ग, पाताल और मनुष्य लोक की सब बातें जान सकता हूँ ।

रत्नप्रभा ने कहा कि यदि तू ज्ञानी है तो कृपा कर हमारे पति को बता, तेरा कल्याण होगा ।

बामन बोला कि मेरी शक्ति से उसे अभी हाजिर करता हूँ । अभी यहाँ एक कपड़े की कुटी बना कर उसमें जाप करने के लिये एक आसन रखो और फिर देखना एक क्षण में क्या होता है !

पीछे वामन के कहे अनुसार कपड़े की एक कुटि बनाई और उसमें आसन रखा । सब लोगों को आश्चर्य में डालने के लिये वह जाप करने के बहाने अन्दर जा अपना असली रूप प्रकट कर तुरन्त बाहर आया । उसे देख सब आश्चर्य करने लगे । प्रियदर्शना के माता पिता को खबर मिलते ही वे हर्षित होकर आये व बड़े स्नेह पूर्वक मिले । इसके बाद वीरभद्र तीनों स्त्रियों सहित वहाँ रहने लगा ।

कुछ समय बाद नगर के उद्यान में त्रैलोक्यपति अठारहवें तीर्थंकर श्री अरहनाथ प्रभु पधारे । देवों ने समवसरण की रचना की । उसमें बारह पर्षदाएँ भगवान की देशना सुनने के लिये योग्य स्थान पर बैठीं । उनमें वीरभद्र भी अपनी स्त्रियों और सास श्वसुर के साथ आकर विनय पूर्वक प्रदक्षिणा दे उचित स्थान पर बैठ गया । भगवान ने सर्वभाषानुगामी वाणी से अमृतधारा के समान धर्म देशना दी । भगवान की देशना सुन कुछ हलु कर्मी जीव सर्व विरति हुए और कुछ देश विरति हुए । देशना पूर्ण होने पर भगवान के चरणों में नमस्कार कर सागरदत्त सेठ बोला हे करुणा निधान ! लोकालोक प्रकाशक, अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले ! मिथ्यायत्व रूप

अँधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान ! हे जगतबन्धु ! आप कृपा कर यह बताइये कि वीरभद्र ने पूर्वभव में क्या सुकृत्य किया था ?

भगवान ने कहा हे सेठ तू वीरभद्र का पूर्व भव सुन। रत्नपुर नगर में निर्धन होते हुए भी व्यवहार से आजीविका चलानेवाला जिनदास श्रावक था। उसके यहाँ एक दिन चौमासी तप के पारणे के निमित्त भगवान अनन्तनाथजी पधारे। उसने उन्हे भक्तिपूर्वक बड़े आदर से शुद्ध आहार दिया। उस आहार के प्रभाव से उसके घर देवों ने बाहर करोड़ सोना मोहरों की वृष्टि की। इससे वह धनवान हुवा दानोपार्जित पुण्य के प्रभाव से वहाँ से मृत्यु पाकर वह जिनदास ब्रह्मलोक में महान् सपत्तिवाला देव हुवा। वहां से चव कर यह वीरभद्र रुप में उत्पन्न हुआ। थोड़ा भी श्रद्धापूर्वक सुपात्र को दिया हुवा दान बहुत प्रकार के फल को देनेवाला होता है।

अपने पूर्व भव को सुन वीरभद्र दोनो हाथ जोड़ बोला हे त्रैलोक्य तारण कृपासिंधु अब मेरा आयुष्य कितना बाकी है यह कृपा कर बताओ।

जिनेश्वर ने कहा हे वीरभद्र अभी तू दान के प्रभाव से तीन सौ वर्ष तक नाना प्रकार के सुख भोगेगा। फिर भोग कर्म का अन्त होने पर तेरे को चरित्र का उदय आवेगा।

जिनेश्वर के वचन सुन वीरभद्र वीतराग को नमस्कार कर सास श्वसुर सहित घर आया। बहुत दिनो तक नाना

प्रकार के भोग भोगता, देव पूजा, स्वामी वात्सल्य आदि धर्म कार्य करता वहीं रहने लगा। पीछे सब की आज्ञा ले अपनी तीनों स्त्रियों और अन्य परिवार सहित अपने नगर में आया। माता पिता पुत्र को तीन वधुओं और अपार धनराशि सहित कुशलक्षेम आया देख बड़े हर्ष पूर्वक मिले और दीर्घकाल के वियोग को भूल गये। वीरभद्र ने माता पिता के चरण छुए बहुओं ने भी सास को नमस्कार किया। सास ने आशीर्वाद दिया दीर्घकाल का वियोग दूर होने से सारा कुटुम्ब आनन्दित हुवा। घर पर आने के बाद वीरभद्र ने माता पिता को अष्टापद, सम्मेत शिखर, आदि तीर्थों की यात्रा कराई। समय पाकर उसके माता पिता अनशन कर देवलोक गये। वीरभद्र ने अनेक दुखियों के कष्ट दूर कर द्रव्य का सदुपयोग किया। नगर में एक विशाल और सुन्दर जिन चैत्य बनवाया। इससे सब जगह उसकी कीर्ति फैल गई। नगर के राजा ने भी उसे नगर सेठ की पदवी प्रदान की। कुछ दिन बीतने पर तीनो स्त्रियों के एक २ पुत्र हुआ। उनके वीरदेव, वीरदत्त, और वीरचंद नाम रखे। चन्द्रकला की तरह तीनों यौवनावस्था में पहुँचे। अब वीरभद्र के भोगावली कर्म पूर्ण होने से उसने अपनी तीनों स्त्रयों और दूसरे पाँच सौ सेठो के साथ चन्द्र-सागर गुरू के पास से चारित्र अङ्गीकार किया। निरतिचार से संयम का पालन करता, दुस्तर तपस्या करता व ज्ञानामृत का श्रवण करता हुआ गुरु के साथ विचरण करने लगा।

एक दिन गुरु के मुँह से सुना कि जो विषय सुखो को त्याग करनेवाले तथा दुष्कर तपस्या करनेवाले तपस्वियो की भावपूर्वक भक्ति करता है उन्हें तीर्थंकर पद प्राप्त होता है।

इस प्रकार तपस्वियो की भक्ति का महत्व सुन वीरभद्र मुनि ने अभिग्रह लिया कि आज से मैं निरन्तर तपस्वियो की भक्ति करूँगा। इस प्रकार वह औषध भैषज्यादि से निरन्तर तपस्वियो की दृढ़ता पूर्वक भक्ति करने लगा।

एक समय गुरु के साथ विहार करते वे शालीग्राम में आये। वहाँ कोई देवता वीरभद्र मुनि की परीक्षा करने के लिये एक मास के उपवासी साधु का रुप बनाकर आया और पारणा करने की इच्छा प्रकट की। उसे तपस्वी समझ कर आसन दिया और गुरु के पास बिठाकर वीरभद्र मुनि उसके पारणे के लिये नदी को पार कर नगर में गोचरी लेने गये। गोचरी लेकर वापिस आये क्या देखते हैं कि नदी में प्रबल बाढ़ आई है। जल प्रवाह को देख मुनि स्थिर हो किनारे खड़े रहे। इतने में लोगो ने कहा महाराज इस नदी का जल प्रवाह अभी एकदम कम नहीं होगा इसलिये आप कुछ देर किसी के घर में रहकर आहार करो। जल प्रवाह कम होने पर विहार करना।

लोगो के वचन सुन वीरभद्र मुनि मन में विचार करने लगे कि मासोपवासी मुनि और गुरू को आहार कराये बिना मैं कैसे आहार कर सकता हूँ। बड़े भाग्य से जो तपस्वी

मुनि आये, वे भूखे होंगे और नदी में बाढ़ आने से मैं पुण्यहीन वहाँ नहीं जा सकता। पुण्य के योग से ही छत्तीस गुणों से सुशोभित, दुष्कर तप करनेवाले नवकल्पी विहार करने वाले, और धर्म देशना देनेवाले गुरू का संयोग मिलता है।

इस प्रकार मुनि शुभ ध्यान पूर्वक भावना कर रहे थे कि इतने में वह देव वहाँ प्रगट हो नमस्कार कर कहने लगा कि मुनि आपको धन्य है, तपस्वी साधुओं की अनन्य और निश्चल भक्ति देख आपकी परीक्षा करने के लिये नदी में बाढ़ लाकर अपराध किया उसके लिये क्षमा करेंगे। ऐसा कह नदी के प्रवाह को दूर कर गुरू के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभो इन मुनि को ऐसा भावना से क्या फल मिलेगा। गुरू ने कहा इस भावना से यह मुनि आगामी काल में तीर्थंकर होंगे। इसलिये कहा है कि:-

मंत्रे तीर्थे गुरौ देवे, स्वाध्यांये भैषजे तथा।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ॥१॥

अर्थः- मंत्र, तीर्थ, गुरू देव, स्वाध्याय तथा औषध के बारे में जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि होती है।

गुरू से यह सुन देव प्रसन्न हो देवलोक को चला गया। पीछे वीरभद्र मुनि ने आकर गुरुको आदरपूर्वक पारणा कराया। इस तरह निरन्तर तपस्वियों की भक्ति कर वहाँ से काल धर्म पा बारहवें अच्युत कल्प में महा समृद्धिवान देव हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनेक जीवों का उपकार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

आठवीं कथा

श्री राजा जयन्त देव
जो आठवें ज्ञान पद के आराधन से
तीर्थङ्कर हुवे.

कौशाम्बी नगरी में महाप्रतापी राजा जयन्तदेव राज्य करता था। वह एक दिन रानियो के साथ उद्यान में क्रीड़ा करने गया। नाना प्रकार की क्रीड़ा करने के बाद में राजा हाथी पर सवार हो वापिस नगर लौट रहा था तब रास्ते मे उसने सुवर्ण कमल पर विराजमान सुरासुरसेवित केवलज्ञान भास्कर यशोदेव मुनि महाराज को धर्मदेशना देते देखा। वह हाथी से उतर कर विनयपूर्वक वन्दना कर गुरू सन्मुख अमृतमय देशना सुनने को बैठ गया। गुरू ने निम्न प्रकार कहना शुरू किया—

'हे भव्यजनो! दुःख से प्राप्त होने वाले इस मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और निरोगी काया को पाकर ज्ञान की तरफ ध्यान लगाओ। ज्ञान से निरतिचार सयम पाला जा सकता है, आत्मा निरन्तर पवित्र होती है। इससे अस्थिरपन स्थिर होता है और अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है। जो ज्ञानवान होता है

उसका इस लोक में भी आदर होता है और अज्ञानी तो आँखों के होते हुए भी अन्धा ही होता है क्योंकि वह करने और नहीं करने योग्य काम को नहीं जानने से और कर्मों में लिप्त होने से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है जिसमे जन्म मरण के भयंकर दुःख भोगता है। ऐसा समझ हे भव्यात्माओ तुम ज्ञान की आराधना करने का प्रयत्न करो। यह सुनकर राजा खड़ा हो हाथ जोड़ बोला 'हे प्रभु मैं ज्ञानी हूँ या अज्ञानी?

गुरू ने कहा—नरेन्द्र तू तो क्या प्रायः देव भी अज्ञानी होते हैं क्योंकि जो मृत्यु पाए हुवों को, मृत्यु पाने वालों को और बुढ़ापा एवम् व्याधित से दुःखी देह को देख दुःखी नहीं होते उनको ज्ञानी कैसे कहा जाय? विषय कषाय वगैरह अगर ज्ञानी में हो तो फिर ज्ञानी और अज्ञानी में क्या फर्क?

इस प्रकार गुरू के वचन सुन राजा वैराग्य भावना लेकर राजमहल में आया। राजकुमार जयवर्म को राज्या रूढ़ कर राजा ने उत्साहपूर्वक गुरू के पास चारित्र लिया। पीछे निरतिचार से चारित्र का पालन, कठिन तपश्चर्या व पारणे पर निरस भोजन, गुरू सेवा आदि करते हुए धीरे २ बार अङ्ग-का अर्थ सहित अध्ययन किया।

एक बार मोहनीय कर्म के उदय से मुनि शातागारव में लुब्ध हुए जिससे चारित्र में शिथिलता और अस्थिरता

आ गई इस तरह शिथिल होते देख गुरू ने कहा हे मुनि प्रमाद का त्याग करो, क्योंकि चौदह पूर्वधर, श्रुत केवली मनःपर्यव ज्ञान को धारण करनेवाले भी प्रमाद के वश होने से संसार की चारों गतियों में भ्रमण करते हैं। ऐसा जान प्रमाद को दूर करो। यह सुन गुरू के उपदेश से तुरन्त प्रमाद का त्याग किया। इसीलिए कहा है कि:—

सुखेन बोध्यते ज्ञानी, नैवाज्ञानी पुमान् क्वचित्।
अयत्नान्मार्गमायाति चक्षुष्मान्नैतरे पुनः ॥१॥

अर्थ—ज्ञानी को सरलता से समझाया जा सकता है परन्तु अज्ञानी पुरूष को किसी भी रीति से नहीं समझाया जा सकता क्योंकि नेत्रवाले मनुष्य को बिना श्रम के ही रास्ता मिल जाता है परन्तु अन्धे को बिना श्रम के रास्ता नहीं मिलता।

पीछे वह मुनि निद्रा, विकथा, कषाय वगैरह प्रमाद का त्याग कर सयम योग में स्थिर चित हो, जिस काल में जो क्रिया करनी हो वह उसी काल में नियमित रूप से कर चारित्र का पालन करने लगा और ऐसा अभिग्रह किया कि आज से मैं निरन्तर ज्ञानोपयोग करूँगा। इस प्रकार अभिग्रह लेकर पाच समिति और तीन गुप्ति सहित विशुद्ध उपयोगपूर्वक अप्रमत शीलव्रत रूपी कवच पहन, मस्तक पर जिनाज्ञारूपी मुकुट पहिन हस्ती और शुभ ध्यान रूपी अश्व पर

चढ़, क्षमा रूपी तलवार ग्रहण कर, कर्मरूपी शत्रु के साथ युद्ध करने लगा। ऐसी लोकोत्तर सेना और आयुध सहित युद्ध करते हुए देखमोह राजा की प्रबल सेना दसों दिशाओं में भाग गई और जयन्त मुनिराज की विजय हुई। उस समय मुनिराज की परीक्षा करने इन्द्र महाराज दिव्याभरण से विभूषित, विविध प्रकार के हाव भाव और विलासयुक्त अनुपम सौन्दर्य शालिनी सुन्दरी का रूप धारण कर मुनि को विचलित करने आया और उन्मादपूर्ण कामोद्दीपक वचन कहने लगा 'हे प्रभु! मैं आपके स्वरूप से मोहित हूँ मेरी इच्छा पूर्ण करने आपके पास आई हूँ इसलिये इस यौवन का स्वाद ले मानव जीवन सफल करो। मैं पूरी आशा से आपके पास आई हूँ। आशा है आप मेरी आशा भंग न कर, संसार सुख भोग कर मुझे संतुष्ट करेंगे। ऐसे अनेक प्रकार के अनुकूल कामोद्दीपक वचन कहे फिर भी धैर्यवान् जयंतमुनि मेरू पर्वत की तरह अचल रहे। इस तरह के उपसर्ग से भी वे श्रुत उपयोग से चलायमान नहीं हुए। तब इन्द्र ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और हाथ मे लकड़ी पकड़ धीरे २ मुनि के पास आ नमस्कार कर पूछा हे ऋषीवर मेरा आयुष्य अब कितना बाकी है बताओ। मुनि ने कहा हे सुरेश आपका आयुष्य दो सागरोपम में थोड़ा सा कम है। इस प्रकार श्रुत उपयोग से उन्होंने इन्द्र को पहचान लिया।

तब इन्द्र ने प्रत्यक्ष हो कहा हे मुनीश ! आपको धन्य है। आप देवांगना के वचन से भी चलायमान नहीं हुए इसलिए मैं आपके चरणों को बारम्बार हर्ष पूर्वक प्रणाम करता हूँ। अब हे प्रभु आप कृपा कर निगोद का स्वरूप बतलाओ।

मुनि ने कहा—हे सुरेश–निगोद के असख्यात गोले हैं। एक २ गोले में असख्यात जीव है, और अनन्त जीवों के समूह है। वे जीव साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही मरते हैं, साथ ही श्वासोश्वास लेते हैं और साथ ही आहार करते हैं। असंख्यात निगोद का गोला, एक निगोद में अनन्त जीव और उस जीव असख्यात आत्मप्रदेश होते हैं तथा एक २ आत्मप्रदेश में अनन्त कर्मवर्गणी, एक २ वर्गणी में अनन्त परमाणु और एक २ परमाणु में अनन्त गुण पर्याय श्री जिनेश्वर ने बताये हैं। इस प्रकार निगोद का स्वरूप सुन इन्द्र प्रसन्न हो तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर मुनि के गुरू के पास गया और विनयसहित नमस्कार कर पूछा हे गुरू देव ! जयन्त को ज्ञानोपयोग से क्या मिलेगा। गुरू ने कहा देवेन्द्र ! यह मुनितीर्थङ्कर पद प्राप्त करेगा। यह सुन देवेन्द्र हर्ष पूर्वक पुनः प्रणाम कर अपने स्थान पर गया। जयन्त मुनि ज्ञानोपयोग से निर्मल चारित्र का पालन कर महाशुक्र देवलोक मे उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पदप्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।



नवम कथा

राजाहरिविक्रम जो नवमें दर्शन पद आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नगर था। वहाँ जिनाज्ञा का पालन करने वाला व न्यायी राजा हरिषेण राज्य करता था। उसके शीलवान व स्वरूपवान रानी थी। उसके हरिविक्रम नाम का गुणवान पुत्र था। यौवनावस्था में पहुंचने पर राजा ने उसका बत्तीस राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया। वह उनके साथ सुख भोगता हुआ दिन व्यतीत करने लगा।

दुर्भाग्यवश पूर्व पापोदय से कुमार के शरीर में एक ही साथ आठ प्रकार का कोढ़ उत्पन्न हो गया। उसको तीव्र वेदना से कुमार व्याकुल रहने लगा। उसकी बत्तीसों रानियाँ उसको देख अत्यन्त दुःख से रोने लगी। अनेक चतुर वैद्यों की औषधि देने पर भी कुमार का रोग जरा भी शांत नहीं हुआ। उस नगर में धनंजय यक्ष की काफी प्रसिद्धि थी इसलिए उसने मन में कहा कि हे दीनवत्सल धनंजय देव! आपकी जगत् में बड़ी महिमा है, इसलिए मेरा निवेदन है कि यदि मेरा रोग दूर हो जायगा तो मैं तुम्हारी यात्रा करके पीछे मुँह में अन्न डालूँगा और आपकी भली प्रकार पूजा तथा

उत्सव कर आपके भोग लगाऊँगा। इस तरह व्याधि से पीड़ित राजकुमार ने पुण्य पाप का विचार किये बिना मिथ्यात्व को ग्रहण किया।

उसी समय नगर के उद्यान में परम उपकारी केवलः ज्ञान रूपी सूर्य से जगत् को प्रकाश करनेवाले केवली मुनि पधारे। देवकृत सुवर्ण कमल पर आरूढ़ हो केवली भगवान समस्त जीवों को देशना देने लगे। हरिषेण राजा को खबर होते ही वह भी बड़े उत्साह से अपने पुत्र को लेकर वहाँ आया। केवली गुरू के दर्शन करते ही कुमार की सर्व व्याधि इस तरह दूर हो गई जिस तरह सिंह को देखकर हिरण भाग जाता है। कुमार ने हर्ष पूर्वक गुरू को प्रणाम किया और उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरू महाराज ने देशना आरम्भ की—

'हे भव्यजनों! दुःख से भरपूर इस ससार समुद्र में घुमाने वाले पाप कर्मों से दूर रहो क्योंकि जैसे कर्म इस भव में करते है वैसे ही परभव में उदय आते हैं। जिस समय जैसे परिणाम से कर्म किया हो वैसा फल वह देता है। पाप कर्म से अनेक प्रकार की तीव्र व्याधि और दुःख सहने पड़ते हैं। ऐसा समझकर पापकर्म से विरक्त हो दान, दया, सयम और जिन सेवा रूपी सत्कर्म करना चाहिये।'

उस समय राजकुमार हरिषेण हाथ जोड़ विनय सहित बोला हे प्रभु! मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा महापाप किया

था जिससे इस युवावस्था में असह्य वेदना मुझे उठानी पड़ी।

गुरू ने कहा हे कुमार! तेरा पूर्व भव सुन! पूर्व महाविदेह में श्रीपुर नगर में समस्त अधर्मों का अधिपति पद्म राजा था। वह निरन्तर शिकार करने जाता और अनेक जीवों की हिंसा करता। वह माँस मदिरा का भी सेवन करता था। एक दिन वह पापी राजा जंगल में शिकार करने जा रहा था तब मार्ग में उसने एक मुनि को कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े देखा। उसे देख उस मूर्ख नर पिशाच राजा ने निर्दयता से मुनि के शरीर में तीक्ष्ण भाला भोंक मुनि को अधर उछाल उसें मार डाला। मंत्री सामन्त आदि को राजा कि इस मुनि हत्या से बड़ा दुःख हुआ और विचारने लगे कि राजा का ऐसा महान् पाप अपने को भी दुःख देनेवाला हो सकता है इसलिए ऐसे अन्यायी दुष्ट राजा को पद्भ्रष्ट कर उसके पुत्र को गद्दी पर बिठाना चाहिये। ऐसा विचार कर सबने मिल राजा को पद्भ्रष्ट कर उसकी जगह उसके पुत्र पुन्डरीक को राज सिंहासन पर बिठाया।

पद्च्युत हुआ राजा जंगल में घूमने लगा। एक दिन घूमते २ उस पापी ने फिर एक मुनि को देखा। मुनि को देखते ही उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। इसलिये तलवार लेकर मुनि को मारने के लिये उसके पास आया। मुनि के तेज प्रताप से वह भस्म हो गया। वह पापी मरकर सातवीं नरक में तैंतीस सागरोपम आयुवाला जीव हुआ और महा-

व्याधि से दुःखी होने लगा। वह दो वार सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से अनन्तवार तिर्यंच योनी में पैदा हुआ। वहाँ भी अज्ञानवश अनन्त दुःख भोगे। वहाँ से अकाम निर्जरा के योग से बहुत से कर्मों को खपा कर सिंधुदत्त सेठ के घर पुत्र रुप में उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम गुणसुन्दर रखा। धीरे २ वह युवावस्था में पहुँचा। उस समय दीन दुखियो और अतिथियो को अन्नदान वगैरह देने लगा। उत्तरावस्था में सब भोगो को छोड़ उसने तपस्वो दिक्षा ग्रहण की। वहाँ निष्कपट भाव से कठोर तपस्या कर क्षुधा तृषा आदि को सहन कर—वहाँ से मरकर तू यहाँ राजकुमार हुआ है। पूर्व में किये मुनि हत्या का बहुत पाप तो तेने भोग लिया परन्तु फिर भी बाकी रहा हुआ इस भव में यौवन वय में उदय आया और उसे भोगना पड़ा।

इस प्रकार गुरू मुख से अपना पूर्व भव सुन मिथ्यात्व मोहनी का क्षय हुआ और जिनोदित तत्व में रुचि उत्पन्न हुई। इस प्रकार ससार का अन्त करनेवाले सम्यग् दर्शन का ज्ञान हुआ। गुरू ने समकित के गुण दोष समझाकर उनके अतिचार भी समझाये। पीछे राजा और राजकुमार आदि गुरू को वन्दन कर अपने २ घर गये। अब राजकुमार जिनेश्वरकी भाव पूर्वक भक्ति कर शुद्ध सयमी साधु मुनिराज की यथाशक्ति सेवा कर, उचित दान दे उदारता से निर्मल समकित का पालन करने लगा। धनजय यक्ष कुमार को अपनी मान्यता पूर्ण करने को कहता परन्तु कुमार

सम्यगदृष्टि होने से नहीं करता। एक बार राजकुमार एक मुनि को वन्दना कर राजमहल को जा रहा था, उस समय इस ने उसे देखा। देखते ही क्रोधान्ध हो यमराज की तरह हाथ में मुद्गर ले कुमार को मारने आया और बोला कि हे कुमार! अपनी की हुई मान्यता के अनुसार मुझे पाड़े का भोग लगा नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा।

कुमार ने बड़े धैर्य से कहा हे यक्ष! सब जीवों को अपना जीव प्यारा है। कोई भी मरना नहीं चाहता। जैसे अपने को जीने की इच्छा होती है वैसे दूसरे जीवों को भी होती है। इसलिये मैं तो कभी भी जीव हिंसा करके तुझे तृप्त करने को तैयार नहीं हूँ। तेरे देवत्व और ऐश्वर्य को भी धिक्कार है कि तू दुर्गति को देनेवाली महादुःख के हेतु रूप हिंसा करने व करवाने में स्नेह करता है। उसी को धन्य हैं और वही गुणगान के योग्य है जिनका हृदय करुणा पूर्ण है। तू मेरे से भोग माँगता है यह भी मिथ्या है क्योंकि मेरी व्याधि तो गुरू के दिव्य दर्शन से नष्ट हुई है न कि तेरी मान्यता से।

कुमार के ऐसे वचन सुन यक्ष ने अतिशय क्रोधित हो कुमार पर जोर से मुद्गर का प्रहार किया जिससे कुमार मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़ा। थोडी. देर में शीतल पवन से चैतन हो होश में आया। फिर यक्ष दयापूर्ण हृदय से, विस्मित हो बोला हे कुमार! मैं तेरे धैर्य से खुश हुआ हूँ। अब मुझे पाडे. के मांस को

इच्छा नहीं है परन्तु सिर्फ मुझे नमस्कार कर अपने घर जा नहीं तो तेरा नाश कर दुँगा।

कुमार ने कहा हे यक्ष! जो देव हिंसा करने व कराने में योग देता है ऐसे मिथ्यादृष्टि देव को कभी नमस्कार नही करूँगा। यह मस्तक तो सब दोषों से रहित वीतराग परमात्मा के सिवाय किसी के सामने नहीं झुकेगा। जिसने अमृत का स्वाद लिया है उसकी खारे नमक पर कैसे रूचि हो सकती है? परन्तु जो तू दया धर्म को ग्रहण कर वीतराग की आज्ञा का पालन करे तो तुझे स्वधर्मी समझ तेरी बड़े आदर से सेवा कर सकता हूँ।

हरिविक्रम कुमार के ऐसे वचन सुन यक्ष को परम शाँति मिली और जीव हिंसा का त्याग कर मिथ्यात्वरहित हो सम्यगृदृष्टि बना। इस तरह सम्यगृदर्शन के प्रभाव से शत्रु भी मित्र बन अनुचर की तरह उसकी सहायता करता है। पीछे कुमार राजा हुआ और अपने पराक्रम से अनेक राज्यो को जीत अपने आधीन किये और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उस समय कलिङ्ग देश के यमराज समान क्रूर और महापराक्रमी यमराज, राजा ने अपने भुजबल के अभिमान से हरिविक्रम राजा की आज्ञा की अवहेलना की। जिससे हरिविक्रम ने बड़ी सेना लेकर कलिङ्ग देश पर आक्रमण किया और कहलाया कि आज से मेरी आज्ञा का

पालन कर नहीं तो युद्ध करने को तैयार हो जा। यह संदेशा सुन यमराज क्रोधित हो अपनी सेना ले उसके सामने आया। दोनों ओर के सैनिक वीरता से लड़ने लगे। देखते २ दोनों सैनायें एकमेक हो गई और भयङ्कर मारकाट होने लगी, रुधिर की नदी बहने लगी। अनेक सैनिकों के धड़ और मस्तक गिरने लगे। उससमय धनंजय यक्ष हरिविक्रम की मदद करने को आ पहुँचा। देव के प्रभाव से हरिविक्रम के सैनिकों में अतुल पराक्रम पैदा हो गया जिससे शत्रु की सेना हारने लगी, और दसों दिसाओं में भागने लगी। यह दशा देख यमराज भी भाग गया। अब हरिविक्रम ने उसके देश को अपने आधीन किया। वहाँ से विजय प्राप्त कर अपनी राजधानी में आकर दूषण रहित निश्चल समकित का पालन करने लगा। पीछे एक अतिशय रमणीय जिन चैत्य बनवाकर उसमें चन्द्रकांतमणि की श्रीऋषभदेवस्वामी की मनोहर प्रतिमा स्थापित कर खूब द्रव्य व्यय कर सिद्धाचल आदि तीर्थों की भाव पूर्वक यात्रा कर समकित निर्मल किया।

एक दिन राजा एकान्त में बैठ विचारने लगा कि अरे! अनेक पापयुक्त आरम्भ समारम्भ वाले राजसुख को बहुत समय तक भोगा परन्तु फिर भी आत्मा तृप्त नहीं हुई बल्कि विशेष तृष्णावत हो दुर्गति की भागी बनी है। इसलिए अब मुझे ऐसा काम करना चाहिये जिससे आत्मा को परम

शान्ति और तृप्ति मिले। ऐसी शाति और तृप्ति तो सब जीवों के निष्काम बन्धु, सन्मार्ग का उपदेश करने वाले सद्गुरु के पास पचमहाव्रत ग्रहण करने पर ही प्राप्त हो सकती है। राजा इस प्रकार के विचार करता है इतने में नगर बाहर उद्यान में अनेक साधुओं सहित चन्द्रमुनि महाराज पधारे। यह खबर मिलते ही राजा हर्ष पूर्वक गुरू की वँदना करने आया। विनय भक्ति सहित गुरू की वँदना कर उचित स्थान पर बैठा। इतने में गुरू महाराज ने ससाररूप व्याधि का नाश करने वाली धर्म देशना शुरू की—

,हे भव्यजनो! इस अनादि अनन्त ससार की चारों गति में यह जीव अनन्त बार जन्म व मर कर अनन्त दुःख भोग चुका है। नरक गति में अतिशय आरम्भ और परिग्रह के वश से छेदन, भेदन, ताड़न वगैरह असह्य दुःख सहने पड़ते हैं। तिर्यन्च गति में परवशता से क्षुधा, तृषा आदि अनेक प्रकार के दु खों का अनुभव करना पड़ता है। यह मनुष्य जन्म बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है। यदि यह प्राप्त भी हो जाय तो उत्तम कुल और जिनोदित धर्म मिलना कठिन है। कदाचित् पूर्व पुण्य से यह प्राप्त भी हो जाय तो आगम श्रवण और उस पर श्रद्धा होना कठिन है, क्योंकि धर्मरूपी धन को चुराने वाले तेरह काठिये निशाचर की तरह निरन्तर प्राणियो के धर्मरूपी धन को लूट लेते हैं। इसलिये अधर्मी प्राणी ससार

में भ्रमणकर अनेक प्रकार की व्यथा का अनुभव करता है। शुभ कर्मवशात् यह जीव मनुष्य और देवगति के उत्तम प्रकार के सुखों को प्राप्त कर उसी में फंस सच्चा सुख मान लेता है यह उसकी अज्ञानता है क्योंकि ऐसे पौद्गलिक सुख तो यह जीव अनन्तबार भोग चुका है, फिर भी उसे तृप्ति नहीं हुई क्योंकि कल्पित सुख में वास्तविक सुख हो भी नहीं सकता और वास्तविक सुख बिना आत्मा की तृप्ति हो नहीं सकती। ऐसी तृप्ति तो सब आशा तृष्णा का त्याग समतारस में लीन होने पर ही होती है। इसलिये समस्त ममता का त्याग कर समभाव में चित्त लगाओ।

इस प्रकार गुरू को देशना सुन वैराग्य पूर्ण हृदय से राजा ने हाथ जोड़कर पूछा—हे प्रभु! मै इस संसार से भयभीत हो आपकी शरण ले व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ। गुरु ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा। गुरू को वंदन कर राजमहल में जा अपने पुत्र विक्रमसेन को राजसिंहासन दे सब की आज्ञा लेकर महोत्सवपूर्वक संसाररूपी समुद्र को पार करनेवाली दीक्षा ग्रहण की। पीछे निरतिचार से दूषण रहित चारित्र का पालन करते हुए बारह अङ्ग का अध्ययन किया।

एक दिन गुरु से बीसस्थानक तप की महिमा सुनी उसमें नवमें दर्शन पद की महिमा सुन उस पद की आराधना

का नियम लिया और निरन्तर शंका रहित अष्टाचार युक्त दृढ़ चित्त से शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करने लगा।

एक बार गुरू के साथ हरिविक्रम मुनि श्रीपुर नगर में पधारे। उस समय भरतक्षेत्राधिपति देवसभा में राजा हरिविक्रम मुनि के गुणों की प्रशंसा करने लगे। उस समय एक देव शंकित हो उनकी परीक्षा लेने श्रीपुर नगर में समृद्धिशाली सार्थवाह बन देवमाया से सुन्दर महल बनाकर रहने लगा।

एक बार हरिविक्रम मुनि इर्यापथिकी ढूंढते गोचरी के लिये उस सार्थवाह के यहाँ आकर धर्मलाभ दे खड़े रहे। मुनि को देख सार्थवाह आदरपूर्वक प्रणामकर मधुर वचन से बोला हे मुनिपति! व्यर्थ कष्ट देनेवाली आर्हत् दीक्षा का त्याग कर इस मेरी देवांगना समान पुत्री का पाणिग्रहण करो। घर २ भटक भिक्षा माँग उदरपूर्ति करने से तो दिव्य वैभव भोग कर मनुष्य जन्म सफल करो। इसके सिवाय कष्ट ज्यादा और फल कम देनेवाले आर्हत् धर्म का त्याग कर थोड़ा कष्ट और विशेष फल देनेवाले बौद्ध धर्म को ग्रहण करो। इस प्रकार बहुत लालच देने पर भी मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए। तब देव ने अपनी माया को समेट प्रगट हो मुनि को प्रणाम कर कहा हे महाभाग! आपको धन्य है। क्योंकि मैंने अनेक प्रकार से आपको विचलित करने का

प्रयत्न किया परन्तु आपको आर्हत धर्म पर ऐसी दृढ़ श्रद्धा देख मैं अत्यन्त हर्षित हुआ हू। इस प्रकार मुनि की स्तवना कर देव अपने स्थान पर गया।

हरिविक्रम मुनि ने निश्चल समकित पालन कर जिन नाम कर्म का बन्ध किया। यहाँ से काल धर्म पा विजय विमान में बत्तीससागरोपम आयुष्यवाले देव हुए। वहाँ से चव कर पूर्व विदेह में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति करेंगे।

दसवीं कथा

धनदेवशेठ

जो दसवें विनय पद के आराधन से तीर्थंकर हुवे

भरतक्षेत्र में मृतिकावती नगरी थी। वहाँ महान् प्रतापी यशस्वी जितारी राजा राज्य करता था। वह अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करता था। उसी नगर में श्राद्धगुणों से विभूषित निर्मल समकितधारी सुदत्त सेठ रहता था उसके धनदेव और धरण दो पुत्र थे इन दोनों में धनदेव ने अपने उत्तम गुणोंके कारण यश प्राप्त किया और धरण निर्दयी, क्रूर और ईर्षालु होने से सब जगह उसकी अपकीर्तिहुई

जब धनदेव का यश अधिक फैलने लगा तो ईर्षालु धरण अपने ज्येष्ठ बन्धु धनदेव को मार डालने का उपाय सोचने लगा। परन्तु

किसी तरह उसे अवसर नहीं मिला। तब एक दिन धनदेव के पास जाकर कहने लगाकि हे भाई अब हम बड़े हो गये है। इसलिए कोई उद्यम कर द्रव्य प्राप्त करना चाहिये। अभी तक पिता के द्रव्य से ही सुख भोग रहे हैं। परन्तु स्वपरिश्रम से पैदा किए धन से सुख भोगना ही उत्तम होता है। इसलिए परदेश जाकर भाग्य की परीक्षा करना चाहिये।

इस प्रकार धरण के कहने और उसकी कुटिलता को नहीं समझने से धनदेव माता-पिता की आज्ञा ले भाई के साथ परदेश रवाना हुआ। मार्ग में चलते २ धरण ने धनदेव से कहा कि हे भाई! संसार में सुख धर्म में होता है या पाप से। धनदेव ने कहा भाई सुख धर्म से ही होता है और सुख का कारण रूप धर्म का महत्व बतानेमें कौन समर्थ है। धर्म इच्छित अर्थ और भोग देनेवाला है तथा अन्त में स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति भी धर्म से ही होती हैं।

धरण ने कहा—भाई! तेरा कहना झूठा है क्योंकि लोग अधर्म से सुखी होते हैं। यह बात प्रत्यक्ष है इस प्रकार विवाद करते हुए दोनो भाइयों ने यह शर्त की कि हम दोनो की बात किसी से पूछनेपर जिसकी बात सच बतावे वह दूसरे की आँखें निकाल ले। यह शर्त कर एक गाँव में जाकर किसी अज्ञानी आदमी से पूछा प्राणियों को जो सुख होता है वह धर्म से होता है या अधर्म से। अज्ञानी ने उत्तर दिया कि अधर्म से सुख होता हैं। धर्म तो केवल

भोले लोगों को ठगने के लिए प्रपंच मात्र है । इस प्रकार धनदेव शर्त हार गया। इसलिए पापात्मा धरण ने निर्दयता से उसको दोनों आँखें निकाल ली। पीछे दोनों वहाँ से चले । रास्ते में एक भयंकर जंगल आया वहाँ धनदेव को छोड़ धरण चुपचाप घर आया और माता-पिता को रुदन करते हुए कहने लगा कि हम दोनों भाई रास्ते में जङ्गल आने से वहाँ विश्राम करने को ठहरे वहाँ एक विकराल बाघ ने आकर धनदेव का भक्षण कर लिया और मैं भय से वापिस यहाँ चला आया ।

इस तरह धरण के मुँह से धनदेव की मृत्यु की बात सुन माता-पिता और धनदेव की स्त्री हृदय विदारक विलाप करने लगे। पुत्र मोह से माता मूर्छित हो गई। धनदेव की स्त्री भी इस प्रकार विलाप करने लगी कि वज्र समान हृदय वाले मनुष्य का दिल भी पिघल जाय। इस तरह सब स्वजन धनदेव के वियोग से दुःखी हुए। परन्तु दुष्ट धरण को तो प्रसन्नता ही हुई ।

पुण्यात्मा धनदेव को जंगल के वनदेवता ने पुण्यात्मा समझ उस पर प्रसन्न हो दिव्य अंजन से उसके नेत्र निर्मल किए जिससे हर्षित हो धनदेव वनदेवता की स्तुति करने लगा । वनदेवता ने वह दिव्यांजन उसको देकर कहा कि यह अँजन किसी भी अन्धे की आँख में लगाने से उसके नेत्र निर्मल हो जायेंगे। ऐसा कह वह देव अदृश्य हो गया। पीछे

वहाँ से धनदेव सुभद्रपुर नगर में आया । वहाँ अरविंद राजा को देवाङ्गना समान प्रभावती नाम की पुत्री पूर्व पाप कर्म के सयोग से मस्तक में व्याधि होने से दोनों नेत्रों से अन्धी हो गई थी । अनेक प्रकार की औषधियाँ करने पर भी उसके नेत्र ठीक नहीं हुए । तब राजा ने नगर में घोषणा की कि जो कोई पुरुष राजकुमारी की आँखें ठीक करेगा उसे राजकुमारी सहित आधा राज्य दिया जावेगा । यह घोषणा सुन धनदेव राजा के पास आकर बोला कि मै राजकुमारी के नेत्र ठीक कर दूँगा । राजा ने कहा तो मैं घोषणा के अनुसार अपने वचन का पालन करूँगा । पीछे धनदेव ने दिव्य अँजन से राजकुमारी के नेत्र ठीक कर दिये । राज ने हर्षित हो राजकुमारी के साथ उसका विवाह कर आधा राज्य कन्यादान में दिया । इस प्रकार धनदेव ने पुण्य व सत्य से राज्य प्राप्त किया । वास्तव में पुण्यात्मा को पग–पग पर सम्पदा प्राप्त होती है ।

धनदेव को राज्य मिला इसकी सूचना उसके माता–पिता वगैरह स्वजनो को मिली इसलिए धरण सिवाय सबको खुशी हुई और धरण खेद पूर्वक विचारने लगा कि मै तो उसे जङ्गल में नेत्र विहीन कर छोड़ आया था और उसे इतना बड़ा विशाल राज्य कैसे मिल गया ? अब पुनः किसी उपाय से उसका नाश करूँ तभी मेरे मन को शान्ति होगी । ऐसा विचार कर नीच अपने पिता से कहने लगा कि हे तात ! आपके पुण्य

प्रताप से मेरा भाई जीवित रहा और इतनी विशाल रिद्धि मिली अतः अब आप आज्ञा दें तो मैं अपने प्रिय भाई से मिलने जाऊं। इस प्रकार पिता से आज्ञा ले भाई से मिलने के बहाने उसे मारने के लिये रवाना हुआ।

धीरे २ जिस नगरी में उसका भाई धनदेव था वहाँ आया। धरण को देख धनदेव पहले का बात भूलकर आनन्द से खड़े हो स्नेह पूर्वक मिला और कुशलक्षेम पूछी। माता-पिता आदि कुटुम्बियों की कुशल पूछी। धरण ने कहा सब कुशल हैं। मेरे को तेरे बिना एक मिनिट भी चैन नहीं पड़ता इसलिए दुःखी रहता था। तेरी यहाँ सुख पूर्वक रहने को सूचना मिलते हो माता-पिता की आज्ञा ले मिलने आया हूँ।

धनदेव ने कहा भाई तेरे आने से मैं आनन्दित हुआ हूँ। अब यहाँ सुख से रह आनन्द भोग। यह राज्य तेरा ही है ऐसा समझ। इस तरह बड़े स्नेह से धरण को रखा। राजा भी धरण को अपने जमाई का भाई होने से आदर करने लगा परन्तु वह नीच तो निरन्तर धनदेव को मारने का उपाय सोचने लगा। परन्तु जिसका आयुष्य बलवान है उसको कौन मार सकता है?

एक दिन धरण राजा के पास जा एकान्त में कहने लगा कि हे महाराज आपने जिसको जमाई बनाया है वह हमारे गाँव का रहनेवाला चान्डाल है।

धरण की बात सुन राजा को क्रोध आया और बोला कि ठीक है अब मैं इसका उपाय करूँगा। ऐसा कह धरण को विदा किया और एकान्त में बैठ विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिये। यदि खुल्लम खुल्ला मरवाता हूँ तो लोक में निन्दा होगी और पुत्री को भी दुःख होगा। इसलिए किसी आदमी के द्वारा गुप्त रीति से मरवा डालना चाहिये। ऐसा विचार कर दूसरे दिन मध्यरात्रि को धनदेव को बुलाया और हत्या करनेवाले को कह दिया कि वह जब रास्ते में आवे तब उसे बिना कुछ पूछे मार डालना।

राजा के संकेत के अनुसार रात्रि को राजा का आदमी धनदेव को बुलाने आया। तब धरण ने कहा हे भाई तू यहीं रह मैं ही राजा के पास जाता हूँ। ऐसा कह धनदेव की आज्ञा ले धरण हर्ष पूर्वक राजा के पास जाने को निकला। मार्ग में हत्यारे ने बिना कुछ पूछे उसे मार डाला। मर कर वह सातवीं नरक में गया। कहा है कि -

षड्भिर्मासैस्त्थापक्षैः षड्भिरेव दिने किल।
अत्युग्रपुन्यपापाना-मिहैव जायते फलं ॥१॥

अर्थ—इस जगत में अति उग्र पुण्य पाप का फल छः माह तथा छ पक्ष या छ दिन में ही मिल जाता है।

बाद में धनदेव को सारी हकीकत मालूम हुई इसलिए उसे संसार से वैराग्य हुआ और चारित्र लेने को तैयार हुआ।

पीछे माता-पिता को बुला सबसे हर्ष पूर्वक मिल मलय केतु पुत्र को पिता के सुपुर्द कर भुवनप्रभ मुनि के पास चारित्र लिया। धीरे २ सब अङ्ग उपाङ्ग पढ़ क्षाम्यादि गुणों से विभूषित हो गुरू के पास विनयपूर्वक रह ग्राम नगरादि में विचरने लगा।

एक दिन धनदेव मुनि ने गुरू से देशना सुनी कि जो कोई सर्व गुणों में प्रधान विनय गुण से गुरूजनों को संतुष्ट करता है उसे शाश्वत सुख प्राप्त होता है, क्योंकि विनय से ज्ञान और ज्ञान से शुद्ध समकित की प्राप्ति होती है, उससे सम्यक् चारित्र, चारित्र से संवर, संवर से तपस्या, तपस्या से निर्जरा, निर्जरा से अष्ट कर्म का नाश, कर्मनाश से केवलज्ञान और उस से अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है।

धनमुनि ने इस प्रकार गुरू से विनय की महिमा सुन गुरू आदि पंच परमेष्ठी का त्रिकरण शुद्धि से विनय करने का नियम लिया।

एक बार गुरू महाराज के साथ विहार करते २ सांकेतपुर नगर के उद्यान में आये। वहाँ आदित्य चैत्य में त्रैलोक्य बन्धु श्री जिनेश्वर की प्रतिमा को वन्दन करने धनदेव गये। वहाँ विनयपूर्वक शुद्ध भाव से स्थिर हो भगवान् की स्तुति करने लगे। उस समय धरणेन्द्र वहाँ भगवान् के दर्शन करने आया। उसने मुनि को निश्चल ध्यान से भगवान् की स्तुति

करते देख परीक्षा करने के लिये अनेक सर्प पैदा कर मुनि के शरीर पर लिपटा और कटवा कर कई उपसर्ग करने लगा। फिर भी मुनि अपने ध्यान से चलायमान नहीं हुए। तब धरणेन्द्र प्रगट हो मुनि की स्तुति करने लगा। पीछे अपने किए उपसर्ग की क्षमा माँग, धरणेन्द्र आचार्य महाराज के पास जा वन्दन कर पूछने लगा कि हे महाराजा! धन मुनि ने जिन और जिन चैत्य को उत्तम विनय से क्या पुण्य उपार्जन किया? गुरू ने कहा हे धरणेन्द्र इस विनय से मुनि ने जिन नाम कर्म का बन्ध किया है। इस प्रकार विनय का अत्युत्तम फल सुन धरणेन्द्र अपने स्थान को लौट गया।

इनके बाद धनमुनि काल धर्म पा सहस्त्राचार देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जायेंगे।



ग्यारहवीं कथा

राजा अरुणदेव

जो ग्यारहवे आवश्यक पद की आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र में शोभायमान विशाल मणिमन्दिर नगर में मणिशेखर राजा राज्य करता था। उसके शीलवान मणिमाला रानी थी। सर्व कला कुशल पराक्रमी अरुणदेव पुत्र था। कुमार यौवनावस्था में आया तब एक दिन प्रधान के पुत्र सुमति के साथ उद्यान में बसन्त क्रीड़ा करने गया। उस समय वहाँ विविध प्रकार की खिली हुई वनस्पति से चित्त में प्रफुल्लित हो उठा। प्रसन्न चित्त से उद्यान की प्राकृतिक सुन्दरता देखते २ कुमार ने उद्यान के एक भाग में वृक्षों की शीतल छाया में पेड़ की डाल पर बँधे हुए झूले पर झूलती हुई एक अनुपम सौन्दर्यशालिनी युवती को देखा। उस सुन्दरी को देख कुमार काम पीड़ित हो स्थिर द्रष्टि से अतृप्त इच्छा से उसकी तरफ देखने लगा। इतने में एक विद्याधर ने आकाश मार्ग से आकर कुमार और उसके मित्र को वहां से उठाकर किसी अरण्य में छोड़ दिया। वहाँ उस विद्याधर के साथ कुमार ने युद्ध किया। इस युद्ध में कुमार ने तलवार के प्रहार से विद्याधर को निर्बल कर पृथ्वी पर पटका। वह

तीव्र प्रकार से रुदन करने लगा। उसके रुदन को सुन उसका भाई अश्वनीवेग खेचर अचानक आकाश मार्ग से उतर आया। उसने अपने भाई की दुर्दशा देख अत्यत क्रोधित हो कुमार और उसके मित्र को उठाकर आकाश में उछाला। वहां से वे किसी अल्प जलवाले अन्धेरे कुए में गिर पड़े। बहुत कठिनाइ से दोनों मित्र आगे चले।

चलते २ वे किसी अरण्य में पहुंचे। वहा लक्ष्मीदेवी के मन्दिर के पास किसी पुरुष को वृक्ष की डाल पर बधा हुआ देखा और पास ही मनोहर आभूषणों से विभूषित सुन्दर स्त्री को विलाप करते देखा। उसके पास जाकर कुमार ने पूछा हे बहिन! यहपुरुष कौन है? और इसकी ऐसी हालत कैसे हुई? इसके पास बैठकर तु क्यों रो रही है?

कुमार के वचन सुन सुन्दरी बोली हे परोपकारी पुरुष! यह विद्याधरो का स्वामी मेरा पति है। हम क्रीड़ा करने के लिए इस लक्ष्मीदेवी के वन में आकर पुष्प एकत्र करते थे, इतने में लक्ष्मीदेवी ने कुपित हो मेरे स्वामी की यह दुर्दशा की है। यदि आप कृपा कर मेरे पति को बंधन से छुड़ा दें तो बड़ा उपकार मानूगी।

विद्याधारी के करुणार्द्र वचन सुन कुमार विद्याधर को छुड़ाने के लिए लक्ष्मीदेवी की स्तुति करने लगा।

'हे भक्तवत्सल जगदेश्वरी, कमलादेवी तेरी जय हो। हे सुगुणभण्डार, जगदाधार, पद्मादेवी! तेरी जय हो। हे

जननी! तेरी कृपा से मूर्ख पंडित हो जाते हैं और अवगुणी गुणवान हो जाते हैं। हे सुरासुर सेवित परमेश्वरी! मुझ गरीब की स्तुति सुन प्रसन्न हो मुझे दर्शन दे।

कुमार की स्तुति सुन लक्ष्मीदेवी प्रत्यक्ष हो प्रसन्न मुख से कहने लगी—हे वत्स! मैं तेरे पर प्रसन्न हुई हूँ, तू इच्छित वर माग, मैं खुशी से दूँगी।

कुमार ने कहा—हे माता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो इस विद्याधर को बंधन से मुक्त कर दें। यही मेरी इच्छा है। तुरन्त देवी ने विद्याधर को बंधन मुक्त कर कहा कि हे खेचर! तेरे को बंधन मुक्त करा नवीन जन्म दिलानेवाले इस परोपकारी कुमार का पूर्ण आभार मान। बंधनमुक्त हो खेचरपति दोनों हाथ जोड़ नम्र वचन से कुमार को कहने लगा, हे परमार्थ वत्सल पुरुषोत्तम! आप जैसे पुरुषों से ही यह पृथ्वी रत्नगर्भा कहलाती है। यह सत्य है कि आज मुझे आपकी कृपा से नया जन्म मिला है। आपने जीवितदान दिया उसके बदले में मैं आपको कुछ भी दे सकूँ इस योग्य नही हूं फिर भी मेरे पास यह प्रज्ञप्ति आदि दस विद्याएं हैं इन्हें ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजियें।

खेचरपति के आग्रह से कुमार ने विद्यायें ग्रहण की। पीछे विद्या के प्रभाव से दोनों मित्र आकाश मार्ग से आगे चले। आगे जाते २ वृक्षों की श्रेणियों से भरपूर और फल फूलों से

भरा हुआ नन्दनवन समान एक मनोहर जंगल देखा। उसमें देवभवन समान विशाल सुवर्णमय श्री शांतीनाथ भगवान का चैत्य भी देखा। उसे देख आकाश से उतर निर्मल जल से स्नान कर सुवासित पुष्प से उल्लसित हृदय से विधि सहित भावपूर्वक भगवान की पूजा की। पीछे एकाग्र चित्त से भगवान की स्तुति करने लगा—

'हे चिदानन्दमय प्रभो! विश्वसेन नरपति के पुत्र आकाश के सूर्य समान श्री शान्ति-जिनेश्वर! आपकी जय हो! आप जगत के जीवों के मनोवांछित पूरे करने वाले कल्पवृक्ष समान हो! हे प्रभो! जो प्राणी आपकी आज्ञा को भावपूर्वक धारण करता है उस प्राणी की आज्ञा अनेक सुरासुर और मनुष्य मानते हैं और दुःखवर्जित अनन्त भोगमय संपत्ति का स्वामी होता है। हे प्रभु! विशेष क्या कहूँ? जो प्राणी क्षीर नीर की तरह आपके ध्यान में तल्लीन हो जाता है वह उसी भव में सिद्धि प्राप्त कर आपके समान हो जाता है। इस प्रकार कुमार भक्तिपूर्वक भगवान की स्तुति कर रहा था इतने में मँडप में कुमार ने भारती देवी के दर्शन किये। देवी के दर्शन होते ही नमस्कार कर सरस्वती देवी की स्तुति करने लगा। हे भारती! हे सरस्वती! हे हँस वाहनी देवी! तेरी दया से कविजन गम्भीर अर्थयुक्त काव्य कर विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। हे महा माता! तेरी कृपा से मूर्ख लोग भी पंडित हो ज्ञान प्राप्त करते हैं।

हे जननी ! विशेष क्या कहूं ? सुर, असुर, विद्याधर और मनुष्य सब कोई तेरा ही गुणगान करते हैं। इस प्रकार स्तुति सुन सरस्वती देवी प्रसन्न हो बोली हे-वत्स ! मैं तेरे पर प्रसन्न हो वरदान देती हूँ कि तू शांतिमति नाम की सुन्दर कन्या के साथ ब्याह कर विद्याधरों का स्वामी हो सुखपूर्वक जीवन यापन करेगा । यह वरदान दे देवी अन्तर्धान हो गई। पीछे कुमार मित्र सहित चैत्य से बाहर निकला। बाहर निकलते ही अनुपम सौन्दर्यशालिनी सुर कन्या को देखी। उसे देखते ही कुमार को याद आ गया कि यह वह सुन्दरी है जिसे मैंने जङ्गल में झुलती हुई देखी थी और यही शांतिमति कन्या होनी चाहिए। कुमार वह विचार कर रहा था इतने में सुन्दरी की दृष्टि भी कुमार पर पड़ी। कुमार को देखते ही उस सुन्दरी को रोमांच हो आया और एकटक उसे देखने लगी । थोड़ी देर इस तरह देखने के बाद उद्यान से विविध प्रकार के सुवासित पुष्प ले अपने हाथ से एक सुन्दर माला तैयार कर उसके साथ एक पत्र लिख अपनी धाय के साथ कुमार के पास भेजी । धाय ने कुमार के पास जा आदर पूर्वक वह माला कुमार के गले में पहना, पत्र उसे दिया और उत्तर के लिए एक तरफ खड़ी रह ।

कुमार ने उल्लसित हृदय से पत्र पढ़ा । उसमें निम्न प्रकार का भाव थ ।

'आर्य पुत्र! मैं क्या लिखूं समझ में नहीं आता। फिर भी लिखने की इच्छा होने से अनुचित भी लिख दू तो आप ध्यान नहीं देवें। दूसरा कुछ लिखू इससे पहले तो मैं अपना परिचय दू वही ठीक रहेगा। वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में शिव मन्दिर नाम के विशालनगर में वज्रवेग विद्याधर की वज्रवेगा राणी से उत्पन्न हुई उनकी मैं शान्तिमति प्रिय पुत्री हूं। मेरे पिता की आज्ञा से इस वन में ही मैं हमेशा रहती हू। और इस चैत्य में भगवान् शान्तिनाथ व सरस्वती देवी की निरन्तर सेवा करती हूँ। किसी नैमितिक के कहनेके अनुसार आज मेरे पूर्व पुण्योदय से आपके दर्शन हुए।' अब मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि आप कृपा कर आज की रात यहीं रहें। प्रातः काल मेरे पिता विवाह की सब सामग्री ले यहा आवेंगे।

मनइच्छित पत्र पढ़ कुमार को बड़ा हर्ष हुआ और प्रेम की निशानी के रूपमें अंगूठी कुमारी के पास भेजी। पीछे वह दिन उसने विचार में ही व्यतीत कर दिया।

दूसरे दिन प्रभात में वज्रवेग विद्याधर वहाँ आया। वह आदरपूर्वक कुमार को नगर में ले गया। पीछे उसने उत्साह से शान्तिमति के साथ उसका विवाह कर दिया। कन्यादान में अपार धन दिया। विवाह के बाद कुमार वहीं रहने लगा।

एक बार नार्योन्मत नाम के विद्याधर ने कुमार के मित्र का हरण किया इसलिए अरुणदेव कुमार ने प्रज्ञप्ति आदि

विद्या के प्रभाव से विद्याधर के साथ युद्ध कर अपने मित्र को छुड़ाया। पीछे अपने पराक्रम से सब विद्याधरों की श्रेणी का राजा हुआ। सच है पुण्यशाली को पग पग पर सम्पदा और विजय मिलती है।

एक बार जयन्तस्वामी मुनि की धर्मदेशना सुन उसने मित्र और स्त्री सहित समकित मूल बारह व्रत ग्रहण किये। फिर सब शाश्वत और अशाश्वत जिनालयों में जिनबिम्बों की वन्दना कर समकित निर्मल करने लगा। कुछ समय आनन्द–पूर्वक निर्गमन कर विद्याधर की श्रेणी का राज्य वज्रवेग के सुपुर्द कर मित्र और पत्नी सहित दिव्य विमान में बैठ आकाश मार्ग से मणिमन्दिर नगर में आया। माता-पिता को खबर मिलते ही उन्होंने हर्ष व उत्साह पूर्वक नगरी में प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता-पिता को नमस्कार किया। शान्तिमति ने भी विनयपूर्वक सास श्वसुर के चरण स्पर्श किए। माता-पिता पुत्र की सम्पदा को देख हर्षित हुए।

पीछे अरुणदेव को राज्यसिंहासन दे राजा ने मुनिप्रभ गुरू के पास चारित्र लिया। अरुणदेव न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बाद राणी के पद्मशेखर पुत्र उत्पन्न हुवा।

एक दिन अरुणदेव बाहर उद्यान में घूमने निकले। इतने में उन्होंने लीलोद्यान उद्यान में शांतमुद्रा युक्त श्री मणिशेखर राजर्षि को देखा। उनको देखते ही राजा को जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिससे उन्होंने अपना पूर्व भव निम्न प्रकार देखा।

शुचिसमति नगरी में कोई महापापारमी वैद्य रहता था। वह लोगों को अनेक प्रकार की चिकित्सा करता था। उसके यहाँ कोई एक तपस्वी मुनि औषध लेने आये। उसने उनको औषध दी जिससे उन कृपालु मुनि ने उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा कि-

गृहिणा गृहधर्मस्य, सारमेतत्परं स्मृतम्।
यथाशक्ति सुपात्रेभ्यो, दानं यच्छुद्धवस्तुनः ॥१॥

अर्थ–गृहस्थी के गृहस्थाश्रम धर्म का यही परम सार रूप फल बताया है कि शुद्ध वस्तु का यथाशक्ति दान देना। सारांश यह है कि सुपात्र को शक्ति अनुसार वस्तु का दान देना। यह गृहस्थो का गृहस्थधर्म का परम साररुप कर्त्तव्य बताया है।

इस तरह वह मुनि उस वैद्य को हमेशा उपदेश देते जिससे वह वैद्य मुनि को निरन्तर शुद्ध भाव से शुद्ध औषध देता और उनका बहुत आदर करता। पीछे वह वैद्य आर्तध्यान से मर कर जङ्गल में पाँच सौ वानरियो का स्वामी हुवा।

एक बार अरण्य में क्रीड़ा करते उस वानर ने एक मुनि के पैर में तकलीफ देखी। उन्हें देखते ही वानर को पुर्व भव याद आया। पुर्व के अभ्यास से सब व्याधियों की औषधियों को जानने लगा। फिर उसने जंङ्गल की किसी वनस्पति को मुख से चबाकर पैर में बाँधी। थोड़ी देर में मुनि का दर्द दूर हो गया। मुनि ने उसे योग्य जीव समझ उपदेश दिया। इसलिये वानर को समकित हुवा और तीन दिन तक सामायिक व्रत व अनशन कर तीन पल्योपम की आयुष्यवाला सौधर्म कल्प में देव हुआ। वहाँ से चव कर, अरुणदेव कुमार हुआ। इस प्रकार अपना पूर्व भव जान अरुणदेव ने राजर्षि को प्रणाम किया। इतने में मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ दिया। फिर राजा उनके सामने बैठा और मुनि ने देशना आरंभ की।

हे राजा! अत्यन्त कष्ट से प्राप्त यह मानव देह और उसमें भी निरोग शरीर, उत्तम कुल, और जैन धर्म का मिलना महा दुर्लभ है। इसमें भी देवादि तीन तत्व पर श्रद्धा होना और भी कठिन है। उन तीन तत्वों का स्वरुप यह है। चौसठ इन्द्रों से सेवित चौतीस अतिशययुक्त सर्वज्ञ जिनेश्वर देव, पंच महाव्रतयुक्त, नवविध ब्रह्मचर्य पालने वाले, सावद्य व्यापार से विराम पाए हुए गुणवंत गुरु तथा जिनोदित क्षमादि दस विध धर्म। इन तीनों को यथार्थ भाव पूर्वक ग्रहण करे तब संसार को अल्पता के हेतुरुप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति

होती है इसके पीछे चारित्र का उदय होता है। चारित्र दो प्रकार का है, एक देशविरति और दूसरा सर्व विरति। देश विरति से स्वर्ग सुख प्राप्त होता है और सर्व विरति से मोक्ष प्राप्त होता है।

गुरु की धर्मदेशना सुन वैराग्य पूर्ण हो गुरू को नमस्कार कर राजमहल में आया वहाँ सर्व प्रधान वर्ग और सामन्तादि को बुला कुमार पद्मशेखर को राज्यासन दे आठ दिन तक जिनचैत्य में महोत्सव कर श्री प्रभाचार्य के पास चारित्र ग्रहण किया। शांतिमति ने भी चारित्र ले लिया। राजर्षिमुनि अरुणदेव ने द्वादशांगी का अध्ययन किया। निरतिचार से चारित्र का पालन कर क्लीष्ट कर्मों का नाश करने लगा।

एक बार गुरू से बीस स्थानक की महिमा सुनी। उसमें ग्यारवें आवश्यक पद के बारे में सुना कि जो मनुष्य सामयिकादि छे आवश्यक को तीन करण शुद्धे शुद्ध उपयोग से आराधना करता है वह जिन नाम कर्म का उपार्जन करता है। सामायिक से संयमनिर्मल होता है, समकित शुद्ध होता है, वन्दन से गुरूजन की सेवा भक्ति होती है प्रतिक्रमण से आत्मगर्हा होती है, कार्योत्सर्ग से चारित्र के अतिचार दूर होते हैं और प्रत्याख्यान से तप की शुद्धि होती है।

गुरु से आवश्यक पद की आराधना का फल सुन राजर्षि

मुनि अरुणदेव ने इसका नियम लिया उपयोग पूर्वक सावधानी से छै आवश्यक क्रिया में प्रमादरहित उद्यम करते अनुक्रम से जिन नाम कर्म उपार्जन किया। मुनि की परीक्षा करने के लिए लक्ष्मोदेवी ने छः माह तक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग किए फिर भी मुनि धैर्य से जरा भी स्खलित नहीं हुए उपसर्ग इस प्रकार थे।

एक दिन सैकड़ों देव कन्याओं के परिवार सहित आकर हाव भाव और कटाक्षयुक्त नेत्रों से कामोद्दीपक वाक्यों से श्री लक्ष्मीदेवी कहने लगी कि हे स्वामी! मैं आशापूर्ण हृदय से कामाग्नि से पीड़ित आपके पास आई हूँ सो आप कृपा कर मुझे विषयामृत पिला शांत करो। इस प्रकार कहने पर भी पत्थर पर पानी डालने के समान मुनि का दिल जरा भी नहीं पिघला। जब अनुकूल उपसर्गों से चलायमान नहीं हुऐ तब प्रतिकूल उपसर्ग करना शुरू किया। फिर भी मुनि ने समभाव पूर्वक सब सहन किया। जब सब प्रकार के प्रयत्न व्यर्थ हो गये तब प्रगट हो क्षमा मांग स्तुति करने लगी।

हे मुनि श्रेष्ठ! आपको धन्य है। मैंने अनेक प्रकार के अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग किये फिर भी आपका चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ। जगत् द्रव्यावश्यक करनेवाले तो बहुत हैं परन्तु आपके समान भावावश्यक करनेवाले विरले ही होते हैं। हे महाभाग्य मुनिराज! मैंने जो २ उपसर्ग किए

उसके लिये क्षमा मांगती हूँ। इस प्रकार मुनि के गुणगान कर विनयपूर्वक वन्दना कर देवी अपने स्थान पर गई।

राजर्षिमुनि निरतिचाररूप से चारित्र का पालन कर, अन्त में अनशन कर बारहवें देवलोक में समृद्धिशाली देव हुए। वहां से चव कर महाविदेह में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।



बारहवीं कथा

राजा चन्द्रवर्मा

जो बारहवें शीलव्रत पद की आराधना से तीर्थंकर हुवे

भरतक्षेत्र में अनेक जिनालयों से भरपूर मनोहर माकर्दीपुर नगर था। वहां पराक्रमी चन्द्रवर्मा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उसके रूपवती और गुणवानचन्द्रावली नामकी रानी थी।

एक बार उस नगर के उद्यान में बहुत मुनियों के साथ चार ज्ञान को धारण करनेवाले श्री चक्रेश्वर आचार्य पधारे देवताओं ने मेरू शिखर जैसा मनोहर ऊँचा सुवर्ण का सिंहासन बनाया व उस पर गुरू महाराज बैठे। उद्यानपति ने गुरू महाराज के पधारने की सूचना राजा को दी। गुरू का आगमन सुन राजा बड़े ठाट बाट से परिवार सहित बँदना करने चला। आते समय मार्ग में राजा ने समतारस के सिंधु समान, नैत्रों को आनन्द देनेवाले सुवर्ण की कांतिवाले दा मुनियो को कायोत्सर्ग में खड़े देखा। उनको यौवनावस्था में ऐसा दुष्कर व्रत का पालन करते देख राजा को विस्मय हुवा। पीछे गुरू के पास आ विनयपूर्वक वंदना कर योग्य आसन पर बैठ गुरू को पूछने लगा हे करूणानिधि! मैने मार्ग में दो मुनियों को देखा। सुकुमार देह और यौवन वय होने पर भी उन्होने चारित्र क्यों लिया? आप कृपा कर बताइये?

गुरू ने कहा हे राजन्! उनके वैराग्य का कारण ध्यान से सुन। कुशस्थलपुर नगर में लोक प्रिय और धनाढय मदन सेठ रहता था। उसके कलह करनेवाली और दुर्गुणों की भंडार चँडा और प्रचँडा दो स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियों के कलह से सेठ की लक्ष्मी भी पलायन कर गई। कहा है कलह से लोक में अपयश, अप्रीति और उद्वेग वगैरह अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं। दोनों स्त्रियों के कलह से सेठ कुछ दिन तक प्रचण्डा के घर सुख पूर्वक रहा।

फिर मदन सेठ प्रचण्डा के घर से चँडा के घर आया। सेठ को आता देख चँडा ने क्रोधित हो मूसल ले मत्र पढ़कर सेठ पर फेंका। इतने में मूसल सर्प रूप हो सेठ को डसने के लिये दौड़ा ऐसा भयंकर दृश्य देख सेठ भय से भागा। सर्प भी फुंकार करता उसके पीछे दौड़ा। सेठ हाफता २ व्याकुल हो दौड़कर प्रचँडा के घर पर वापिस आकर खड़ा रहा। तबप्रचँडा कहने लगी–हे नाथ! आप आकुल व्याकुल और भय से क्यो कांप रहे हो? सेठ दीन होकर कहने लगा–प्रिया! आज चँडा के घर वैसे ही चला गया इतने में उस दुष्टा ने निष्ठुर हो मुझे मारने के लिये इस भयंकर साँप को भेजा है, देख वह आया। इतना कहते ही तो वह साँप नजदीक आ पहुँचा। सर्प को देख प्रचँडा ने अपने शरीर का मैलउतार सर्प पर फेंका। वह मैल मत्र के प्रभाव से नोलिया बन गया और उसने सर्प का नाश कर दिया।

पीछे भय रहित होने पर सेठ विचारने लगा कि अरे! ये दोनो स्त्रियाँ पाप की खान है। ये दोनो मंत्र औषधि को जानने वाली है इसलिये कभी मेरे पर क्रोधित हो मेरे को मार सकती हैं जिससे आर्तध्यान से मर दुर्गति में जाऊँगा। इसलिये इन दोनो राक्षसनियों को छोड़ अन्य किसी जगह चला जाना चाहिये। ऐसा निश्चय कर रात्रि में दोनों स्त्रियाँ व घर को छोड़ देशान्तर जाने को रवाना हो गया। कुछ दिनों में वह

काशीपुर पहुँचा और सोचने लगा कि अब मैं यहाँ निर्भय होकर रहूँगा। क्योंकि इतनी दूर मैं रहता हूँ इसका पता उन दोनों को कहाँ से लगेगा ! यह सोच मदन सेठ नगर में आया उस नगर में धनाढ्यभानुसेठ रहता था। उसके भानुमति स्त्री के चार पुत्र और एक विद्या और कला को जाननेवाली विद्युत समान कांतिवाली विद्युल्लता पुत्री थी। वह पिता की प्यारी थी। व्याह करने योग्य होने पर सेठ उसके समान गुणवाले पति की खोज में था। मदन सेठ घूमता २ उसी सेठ की दुकान पर जा पहुँचा। भानुसेठ ने उसे देखा। उसे देख वह विचारने लगा कि यह कोई कुलीन मनुष्य मालुम होता है। ऐसा सोच आदर पूर्वक अपने घर लेगया और सम्मान पूर्वक रखा। रात्रि में भानुसेठ की कुलदेवी ने आकर स्वप्न में कहा कि तेरी पुत्री के योग्य यह वर है, इसके साथ तेरी पुत्री का व्याह कर देना। देवी के कहने से सेठ ने दूसरे दिन स्वप्न की बात सब कुटुम्बियों को कही। सब की सम्मति से उत्साह पूर्वक मदन सेठ के साथ विद्युत्लता का लग्न कर दिया।

कुछ दिन तक मदन सेठ श्वसुर के घर सुखपूर्वक रहा। पीछे एक दिन अपने घर जाने की इच्छा हुई। यह बात उसने अपनी प्रिया को बताई। उसने जाने के लिये स्वीकृति दी और मार्ग में भोजन के लिये एक बर्तन में सत्तू रख कर दे दिया। वह लेकर मदनसेठ अपने घर की ओर रवाना हुवा। मार्ग में

एक सरोवर आया वहाँ सत्तू खाने बैठा और विचार करने लगा कि कोई अतिथि मिल जाय तो इनमें से थोड़ा उसे देकर पीछे खाऊँ। ऐसा विचार करता है इतने में एक तापस वहाँ आ पहुँचा। उसे थोड़ा सत्तू दे स्वयं पानी लेने सरोवर पर गया। इतने में वह तापस सत्तू खाने से बकरा हो गया। यह आश्चर्यजनक बनाव देख सेठ दिग्मूढ़ हो विचारने लगा कि इस दुर्गति के द्वार रूप इस स्त्री का ही यह कार्य है। स्त्रियो का स्नेह केवल अस्थिर और प्रपचरूप है। इसीलिये कहा है

ग्रहचरियं रविचरियं, ताराचरियं चराचर चरियं।
जाणानि बुद्धिमता, महिला चरियं न जाणन्ति ॥१॥
मच्छपय जलपंथे, आकाशे पक्खियाण पयपन्ति।
महिलाण हियमग्गो तिनुवि कोए न दीसन्ति ॥२॥

अर्थ—ग्रहों की, सूर्य की चाल, ताराओं की, चाल और चराचर पुरुषों का चारित्र ये सब बुद्धिमान् जान सकता है परन्तु स्त्री के चारित्र को कोई नहीं जान सकता। पानी में मच्छ के पैर, आकाश में पक्षियों की पद पंक्ति, और स्त्री के हृदय का मार्ग ये तीनों इस लोक में नहीं देखे जा सकते।

मदन सेठ इस प्रकार विचार करता है इतने में वह बकरा काशीपुर तरफ भागने लगा। कौतुक देखने को सेठ भी जल्दी २ उसके पीछे चला। बकरा दौड़ता २ विद्युत्लता के घर पहुचा। मदन सेठ भी चुपचाप घर के आसपास कोई

नहीं देख सके और खुद सब कुछ देख सके इस तरह छिप कर खड़ा रहा। बकरे को आया देख विद्युल्लता ने क्रोधित हो उसे खम्भे से बांधा और पीछे लकड़ी से मारने लगी। बकरा बिचारा बै बै कर चिल्लाने लगा। वह दुष्टा ज्यादा और प्रहार कर कहने लगी कि जो कोई दुसरा भी सत्तू खाएगा उसे भी ऐसी ही दुःख भोगना पड़ेगा। बहुत देर पीछे उसे दुःखी जान मूल स्वरूप में लाई और आश्चर्य में हो पूछने लगी कि तू यहाँ कैसे आया! तापस ने सब हकीकत बताई। इसलिये विद्युल्लता मन में दुःखी हो विचारने लगी कि यह तो किसी के बदले किसी को दुःख मिला। पीछे तापस को जाने की आज्ञा दी।

यह घटना देखकर मदन सेठ मन में सोचने लगा कि यह तो पहले की दोनों स्त्रियों से भी आगे बढी हुई है। मेरे दुर्भाग्य का अन्त ही नहीं है। घर से चला वन में गया तो जंगल में आग लगी, वहाँ से निकल यहाँ आया तो यह तीसरी उन दोनो से भी बढ़कर निकली। अब यदि घर जाऊं तो पहलेवाली मार डाले और यहाँ रहूं तो यह मार डाले। इसलिए राक्षसी समान इन स्त्रियों की मुझे जरूरत नहीं। अब तो और कहीं जान चाहिए। ऐसा सोच वहाँ से निकल थोड़े दिनों में हसँती नगर में पहुचा। वहाँ चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद रङ्गवाला मनोहर श्री ऋषभदेव का

उस समय उस नगर में वसुदेव सेठ के श्रीदत्तकुमार और श्रीपुज सेठ की पुत्री श्रीपति का लग्न होनेवाला था। इसलिये दोनो घरों में आनन्द और धाम धूम हो रही थी। उसे देखने के लिए अनेक स्त्री पुरूष इकट्ठे हुए थे। बरात भी ठाट बाट से नगर में घूमती २ श्रीपुज सेठ के घर आई। वर राजा तोरण पर पहुचा। इतने में क्रूर कर्मों एवम् पूर्व पाप कर्मोदय के कारण वर राजा की वहीं मृत्यु हो गई। अचानक पुत्र के मृत्यु से वसुदेव बड़ा दुखी हुआ। दुल्हन का परिवार भी दुखी हुवा। सब लोग शोकातुर हो अपने २ घर गये। इतने में श्रीपुज शेठ ने देववाणी सुनी की हे सेठ तू तेरी पुत्री का विवाह तेरे घर के सामने छिपे हुए धनदेव के साथ आज ही कर देना क्योंकि यह कन्या उसी के योग्य है। यह सुनते ही श्रीपुज सेठ ने धनदेव को ढुढ निकाला और उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। उस समय नगर में गई हुई धनदेव की दोनो स्त्रियाँ लग्न समय वहाँ आ पहुची और विवाह मण्डप में अपने पति को देखा। उसे देखते हो आश्चर्य में हो दोनो कहने लगी कि अपना पति यहाँ कैसे आया? क्या यह अपने को धोखा देकर अपने पीछे २ आया है? परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। बहुत से मनुष्यो की आकृति समान होती है इसलिए अपने को ऐसा लगता है। हजारों कोस दूर अपने नगर से वह यहाँ किस तरह आ सकता है? इस

तरह दोनों ने अपना समाधान कर, लग्नोत्सव देख घर लौटने लगी।

लग्न पूर्ण होने पर धनदेव ने कन्या के वस्त्र पर कुंकुम से एक श्लोक लिखा।

कुत्र वसती रत्नपुर, कः क्वासौ गगन मंडनश्चूतः।
धनपति सुत धनदेवे, विधेर्वशात्सुखकृतेश्चूतः ॥१॥

अर्थः—रहने का स्थान रत्नपुर कहाँ? और आकाश का भूषण रूपी यह आम्र कहाँ? परंतु यह सब धनपति पुत्र धनदेव के लिये दैवयोग से यह आम्र सुख देनेवाला हुवा। यह लिख और किसी बहाने से बहार निकल गुप्त रीति से शीघ्र नगर के बाहर आया। वहाँ उसने स्त्रियों को जल्दी २ जाती हुई देखी। थोड़ी देर में सब आम्र के पास पहुँचे। दोनों स्त्रियाँ जल्दी पेड़ पर चढ़ गई। धनदेव भी पहले की तरह अपनी जगह बैठ गया। इतने में आम्र वृक्ष वायु वेग से गगन मार्ग से होता हुआ अपनी जगह आकर रुक गया। तब धनदेव स्त्रियों के पहुँचने से पहले घर पहुँच सो गया।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी दूसरी स्त्री पति को जगाने गई। वहाँ जाकर उसने देखा कि उसके हाथ में लच्छा और मेहंदी और ललाट पर कुंकुम का टीका है इसलिए वह तुरंत पहली स्त्री के पास जाकर कहने लगी कि बहन पति के हाथ में लच्छा, मेहंदी और ललाट पर कुंकुम का टीका है।

इसलिये अवश्य रात्रि को रत्नपुर में श्रीमति के साथ व्याह करनेवाले अपने पति है। इसमें जरा भी शंका नहीं। उन्होंने गुप्त रीति से अपनी बातें जान ली है। अब क्या होगा ?

पहली स्त्री ने कहा इसमें क्या है ? ऐसा कह एक डोरा मत्रकर सोते हुए धनदेव के सीधे पैर पर बाध दिया। डोरा बाधते ही वह तोता बन गया। उसे पकड़ पींजरे में रख दिया। अब रत्नपुर नगर का हाल सुनिये कि वहाँ क्या हुवा। जब धनदेव प्रातःकाल तक वापिस नहीं आया तब श्रीमति ने अपने पिता को कहा यह सुन श्रीपुज सेठ दुखी हुवा। इतने में सेठ की नजर श्रीमति के-वस्त्र पर लिखे हुए श्लोक पर पड़ी। श्लोक पढ़कर सेठ खुश होकर बोला हे पुत्री ! देख तेरे वस्त्र पर तेरे पति ने श्लोक लिखा है उससे उसका नाम और नगर का पता चलता है। वह हसतीपुर नगर के धनपति सेठ का पुत्र धनदेव है। वह किसी कारण वश रात्रि को ही वापिस चला गया है। अब अपने को पता लगाना चाहिये। तू जरा भी चिंता मत कर। उसी दिन सागरदत्त व्यापारी अपने जहाज लेकर हसतीपुर जानेवाला था। उसके साथ श्रीपुज सेठ ने एक पत्र और बहुमूल्य हार धनदेव को देने के लिए सागरदत्त को दिया। सागरदत्त का जहाज अनुकूल पवन होने के कारण शीघ्र ही हसतीपुर पहुँच गया। वहाँ आकर धनदेव का पता लगा, उसके घर जाकर पूछा कि धनदेव सेठ है क्या ?

घर में से स्त्रियों ने जवाब दिया कि नहीं है, वे तो राज्य कार्य से ताम्रलिप्त नगर गये हैं। आप कहाँ रहते हो और क्या काम है ?

सागरदत्त ने कहा कि मैं रत्नद्वीप के रत्नपुर नगर का व्यापारी हूँ। वहाँ से श्रीपुंज सेठ ने धनदेव सेठ को यह पत्र और हार भेजा है।

स्त्री ने कहा बहुत अच्छा लाओ। सेठ जाते समय कह गये थे कि यदि कोई रत्नपुर जानेवाला हो तो उसके साथ यह तोता श्रीमति के पास भेज देना। इसलिये तुम यह तोता श्रीमति, को दे देना। यह कह पत्र व हार लेकर तोते का पींजरा सागरदत्त को दे दिया।

सागरदत्त पींजरा ले थोड़े दिनों में अपने नगर में आया और पींजरा सेठ को दे जो कुछ हुआ वह सब कह सुनाया। सेठ ने वह तोता श्रीमति को दे दिया। श्रीमति निरन्तर उसे अपने पास रखती और विनोद करती। एक दिन तोते के पैर में डोरा बंधा देख उसे तोड़ डाला डोरा टूटते ही धनदेव अपने असली रूप में प्रगट हो गया। यह देख सब आश्चर्य हो पूछने लगे कि ऐसा होने का क्या कारण है? धनदेव ने कहा कि यह सब कर्मवश हुवा है। ऐसा कह अपनी स्त्रियों को वात कही। कुछ दिन सुख पूर्वक श्रीपुंज सेठ के यहाँ रह पीछे श्रीमति को ले अपने नगर में आया। परन्तु

पहले की बात याद न कर सुखपूर्वक तीनों स्त्रियाँ साथ में रहने लगी।

एक दिन श्रीमति सुवर्ण थाल में पति के पैर धो रही थी। पैर धोने के बाद थाल का पानी पहले की स्त्री ने जमीन पर फेंक दिया। फेंकते ही पानी चारो तरफ धीरे २ समुद्र की तरह बढ़ने लगा। क्षण २ में पानी को बढ़ता देख धनदेव हृदय में घबराने लगा।

श्रीमति ने यह देख अपनी शक्ति से पानी की माया को समेट ली। यह देख धनदेव विस्मित हो सोचने लगा कि यह तीसरी स्त्री तो इन दोनो से भी शक्तिशाली है। मेरे दुष्ट कर्मों के उदय से ही ऐसी स्त्रियाँ मिली हैं। श्रीमति की ताकत को देख पहले की दोनो स्त्रियाँ उसकी आज्ञा में प्रीतपूर्वक रहने लगीं और धनदेव हमेशा उससे डरता हुआ रहने लगा।

इस प्रकार कह वह मदन से बोला हे मित्र मैं ही धनदेव हूँ कि उन जीवित बलाओं के पास हमेशा डरता हुआ रहता हूँ और उनको छोड़ भी नहीं सकता।

धनदेव का सारा दृष्टान्त सुनकर मदन सेठ कहने लगा कि अरे! वे पुरुष धन्य है जो स्त्रियो के मोह में नहीं फसते सब ममत्व को छोड़ शीयलव्रत को ग्रहण कर शान्ति प्राप्त करते है। इतने में वहाँ हमारे आने की सूचना मिलने पर वे

दोनों हमारी धर्म देशना सुनने आये। देशना सुन हमारे पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ ग्यारह अङ्ग का अध्ययन कर समिति गुप्तियुक्त निरतिचार से संयम का पालन करने लगे। हे राजन् रास्ते में जिन मुनियों को तुमने ध्यान में खड़े देखा वे वही भाग्यशाली है।

राजा ने कहा हे प्रभु! आपने यौवनावस्था में दीक्षा क्यों ली? आपने कहा हे राजन! गृहस्थाश्रम में सर्वथा षट्काय जीवों की रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि घर में रहने से घर, घंटी आदि अनेक अधिकारों से महा पापारम्भ होता है और उनसे षट्काय जीवों की हिंसा होती है। एक बार स्त्री संभोग से नौ लाख प्राणियोंकी हिंसा होती है। जगत में जीवों की रक्षा करनेवाले तो अनेक पुरुष मिल जाते है परन्तु मैथुन सेवन से मरनेवाले जीवों को अभयदान दे मैथुन का त्याग करनेवाले पुरुष विरले ही होते है।

गुरु से उपदेश सुन राजा चंद्रवर्मा को प्रतिबोध हुवा। गुरु को वंदन कर राजमहल में जा अपने पुत्र चन्द्रसेन कुमार को राजगद्दी दे जिन मन्दिर में बड़ा उत्सव कर गुरु से चारित्र ग्रहण किया। फिर ग्यारह अंग का अध्ययन कर समिति गुप्ति पूर्वक शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा। एक दिन गुरु से बीसस्थानक की महिमा सुनी कि यदि कोई बीसस्थानक पद की आराधना करता है वह संसार भ्रमण को दूर करने वाले

त्रैलोक्यवद्य जिन नाम कर्म का उपार्जन कर मोक्ष प्राप्त करता है। इसमें भी जो बारहवें स्थान की आराधना कर शीयल-व्रत का पालन करता है वह शीघ्र जिन नाम कर्म का उपार्जन करता है। क्यो कि सब व्रतो में शीयलव्रत सब से ज्यादा श्रेष्ठ बतलाया है।

इस प्रकार गुरु से शीयलव्रत की महिमा सुन राजर्षि मुनि नववाडयुक्त शीयलव्रत का पालन करने लगा। किसी भी स्त्री के सामने सराग दृष्टि नहीं डालता। स्त्री सबधी वर्णन व उस सबधी कथा वार्ता का भी त्याग कर स्थिर चित्त से शीयलव्रत का पालन करने लगा।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने राजर्षि मुनि की प्रशसा कर कहा कि मुनियो में शिरोमणी राजर्षि चद्रवर्मा मुनि को धन्य है। वह देवेन्द्र के चलायमान करने पर भी अपने व्रत से चलाय-मान नहीं होता है। सुरेन्द्र के मुँह से मुनि की स्तुति सुन मुनि की परीक्षा करने के लिये विजयदेव देवता जहाँ राजर्षि मुनि कायोत्सर्ग करके खड़े थे वहाँ आया। वहाँ आकर अनेक अप्सराओं को इकट्ठी की। अप्सरायें अनेक प्रकार के हाव भाव और कटाक्ष कर मुनि के पास आकर प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामी! पुण्य से प्राप्त हुए इस यौवनावस्था में योग को छोड़ भोग विलास करो। आप सब जीवो पर करुणा करनेवाले हो, हम आपके पास आशा लेकर आई हैं, इसलिये

हमें निराश व दुःखी न कर हमको स्वीकार करो। इस प्रकार अनेक प्रकार के कामोद्दीपक वचन कहने लगी। फिर भी मुनि का मन जरा भी विचलित नहीं हुवा। अन्त में देव ने प्रकट हो मुनि की स्तुति कर, गुरु महाराज के पास जाकर पूछा कि हे प्रभु! राजर्षि मुनि को दृढ़ शीयलव्रत पालने का क्या फल मिलेगा। गुरु महाराज ने कहा इस महाभाग्य को शीयल के प्रभाव से त्रैलोक्य पूज्य जिन पद प्राप्त होगा। शीयल की महिमा सुन देव अपने स्थान पर गया। चन्द्रवर्मा मुनि काल धर्म पा ब्रह्मदेवलोक मे देवता हुए। वहाँ से चवकर महा विदेह क्षेत्र में पुण्डरिकिणी विजय में पुष्कलावती नगरी में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष में जायेंगे।

तेहरवीं कथा

राजा हरिवाहन

जो तेरहवें शुभ ध्यान पद आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र में संकेतपुर नामका नगर था। जहाँ शत्रुओं को त्रास देनेवाला, सूर्य समान प्रतापी, शौर्यादि गुणयुक्त हरि–

वाहन राजा सुखपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उस राजा का छोटा भाई मेघवाहन युवराज था। वह विनयवान व राजा की आज्ञा में चलने वाला था। हरिवाहन सब बातों में निपुण था परन्तु धर्म कार्य में प्रमादी था।

एक बार उस नगर के उद्यान में चार ज्ञान को धारण करने वाले श्री शालभद्र आचार्य मुनि परिवार सहित पधारे। उस समय उनको वन्दन करने के लिये युवराज, सेठ, सामंत आदि वहाँ गये। गुरु महाराज ने देशना आरम्भ की। इतने में भवितव्यता वश हरिवाहन राजा भी अचानक वहाँ आ पहुँचे। गुरु की गंभीर गर्जनायुक्त देशना की ध्वनि कानों में पहुँचने पर वह भी अश्व से उतर पर्षदा में आ विनयपूर्वक गुरु को वंदना कर योग्य आसन पर बैठ गये। गुरु महाराज की देशना धारा प्रवाह से चलने लगी।

हे भव्य जीवो! इस संसार में जड़ बुद्धि प्राणी, मनुष्य जन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, निरोगी देह और तीक्ष्ण बुद्धि वगैरह अनुकूल साधन प्राप्त कर भी धर्म का आदर नहीं करता वह पीछे पश्चाताप करता है। इसीलिये कहा है कि—

आदित्यस्य गतागतैरहरहः सक्षीयते जीवितम्
व्यापारैर्बहुकर्मभारगुरुभीः कालो न निज्ञायते॥
द्रष्ट्वा जन्मजरा विपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत॥१॥

अर्थ— दिन प्रति दिन सूर्य के उदय और अस्त से जीव क्षीण होता जाता है, परन्तु कार्य भार से कितना समय बीत गया यह नहीं जानता। लोगों का जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और विपत्ति देख दुखी नहीं होता। इससे मालूम होता है कि मोहमय मदिरा पीकर यह जगत उन्मत्त हो गया है।

जो भव्य प्राणी प्रमाद रहित धर्म कार्य में उद्यम करता है वह शीघ्रता से इष्ट वस्तु को प्राप्त करता है। इस पर दो वैश्याओं का दृष्टांत कहता हूँ वह एकाग्रचित्त से सुनो।

राजगृही नगरी में अनेक कलाओं से युक्त व स्वरूपवान प्रसिद्ध नायिका मगधसेना रहती थी। उस नगर में दूसरी एक वैश्या भी रहती थी वह भी मगधसेना से रूप गुण में कम नहीं थी। उसका नाम मगधसुन्दरी था। वे दोनों एक दूसरे के रूप और कलाओं की स्पर्धा करती हुई राजा के पास आकर न्याय की प्रार्थना की। इसलिये राजा ने कहा कि जब मै तुम दोनों की कला को देखूंगा तब कह सकता हुँ कि तुम दोनों में कौन कुशल है? इस वास्ते तुम दोनों राजसभा में अपनी २ कला बताओ। दोनों ने यह बात स्वीकार की। दूसरे दिन राज सभा में आकर पहले मगधसेना ने अपनी कला सामान्य हावभाव से बताई, जिससे राजा को कोई खास खुशी नहीं हुई। पीछे मगधसुन्दरी दिव्य अलंकारों से विभुषित सुन्दर श्रृंगार कर हावभाव और कटाक्ष करती हुई सभा में आई

जिसको देखते हो सभासद स्थिर दृष्टि से उसकी तरफ देखने लगे । मगधसुन्दरी ने सभा में आकर कणेर फूल में सुई लगा उसे जमीन पर उलटी रख उस पर नाच किया तथा और भी विविध प्रकार से अप्सराओं की तरह दिव्य नृत्य किया। इसे देख राजा और सब सभासद प्रशसा करने लगे और कहा कि समस्त कलावान नायिकाओं में मगधसुन्दरी नायिका प्रधान है। ऐसा कह उसे उत्तम पारितोषिक दिया । प्रमाद रहित इष्ट कार्य की सिद्धि में तत्पर रह मगधसुन्दरी ने विजय प्राप्त की और प्रमाद से मगधसेना पराजित हुई । इसी तरह जो कोई भव्यजन पुन्य कार्य के लिये प्रमाद रहित उद्यम करता है उसे अन्त में इच्छित वस्तु प्राप्त होती है । इसलिये हे भव्य जीवो ! तुम प्रमाद को छोड़ धर्म काय में उद्यम बनो ।

गुरु की देशना सुन हरिवाहन राजा को सवेग प्राप्त हुवा और युवराज मेघवाहन को राज्य दे अन्त पुर सहित गुरु के पास चारित्र लिया। फिर राजर्षि मुनी ने द्वादशागी का अध्ययन किया और निर्मल सयम का पालन करने लगा ।

एक बार गुरु से बीसस्थानक सम्बधी व्याख्यान सुन । उसमे तेरहवें शुभध्यान पद के बारे में सुना कि जो कोई समतापूर्वक सम्यग भावयुक्त स्थिर चित्त से निर्मल ध्यान करता है वह प्राणी अल्प समय में लोकोत्तर लक्ष्मी को प्राप्त करता है। गुरु मुख से यह श्रवण कर राजर्षि मुनि हर्षपूर्वक तेरहवें ध्यान पद की आराधना करने लगा। प्रमाद रहित निःकषाय हो स्थिर

चित्त से निरन्तर मौन प्रतिमा धारण कर उज्जवल लेश्या से शुभ ध्यान करने लगा ।

एक दिन शक्रेन्द्र ने देव सभा में राजर्षि मुनि की प्रशंसा करते हुए कहा कि मेरु की तरह निःप्रकम्प चित्त से ध्यान में रहे हुए राजर्षि हरिवाहन मुनि को ध्यान से गिराने में देव भी असमर्थ है। सुरपति के मुख से प्रशंसा सुन इन्द्र की एक अग्र महिषी को विश्वास नहीं हुवा और वह मुनि की परीक्षा करने को देवांगनाओं के समूह सहित जहाँ मुनि ध्यान कर रहे थे गई । विविध प्रकार के नृत्य और संगीत का आयोजन किया जिसे देख कोई भी हीन सत्ववाला प्राणी तुरन्त चलायमान हो जाय। परन्तु महान् धैर्यवान राजर्षि मुनि तो केवल नासाग्र दृष्टि रख निर्मल ध्यान में लीन रहे। नृत्य कला की तरफ तो दृष्टि भी नहीं की। इस तरह उन देविओं ने छः माह तक नाटक किया परन्तु मुनि जरा भी विचलित हुए बिना ध्यान में ही लीन रहे। जब मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए तो इन्द्राणी प्रगट हो मुनि की प्रशंसा कर अपने स्थान पर गई । हरिवाहन मुनि ने निर्मल ध्यान के प्रभाव से जिन नाम कर्म उपार्जन किया और काल धर्म पा सनत्कुमार देवलोक में देवता हुए। वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जिन पद प्राप्त कर मोक्ष जायेगे ।

चौदहवीं कथा

राजा कनक केतु
जो चौदहवें तप पद आराधन से
तीर्थङ्कर हुवे

भरतक्षेत्र में अत्यंत मनोहर कांपिल्यपुर नगर में मह
पराक्रमी विश्वम्भर राजा राज्य करता था। उसके शीलवान,गुणवान
रूपवान कनकावली पटरानी थी। उसके कनक केतु नाम क
राजकुमार था। उस कुमार को योग्य वय में गुरु के पार
विद्याभ्यास के लिये भेजा। यौवनवय में पहुँचते २ वह स
कलाओं मे प्रवीण हो गया। परन्तु मोहनीय कर्म के कार
वह कुमार धर्म से विमुख रहा। यह देख राजा विचार कर
लगा कि अपने शरीर से उत्पन्न हुआ मैल और रोग जिस तर
अप्रिय और दूर करने योग्य होता है वैसे ही यह मेर से उत्प
धर्म हीन अधर्मी पुत्र मुझे अप्रिय और छोड़ देने योग्य है
राजा इस प्रकार विचार करता है इतने में उद्यानपाल
आकर सूचना दी कि सम्यग्दर्शन के दातार श्रुत केवल
श्री शांतिसूरि महाराज अपने मुनि परिवार सहित पधारे हैं।

गुरु आगमन की सूचना देने वाले को खूब द्रव्य दे राजा कुमार को ले परिवार सहित गुरु को बॅदन करने गया। विनय सिहत वँदना कर उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरु महाराज ने संसाररुप रोग का नाश करने वाली देशना आरम्भ की।

हे भव्य जनो! जो प्राणी इस संसार में धर्म बिना सुख प्राप्त करना चाहता है तो यह समझना चाहिये कि वह पानी को बिलोकर घी प्राप्त करना चाहता है। दुःख से प्राप्त होने वाला यह उत्तम मानव जन्म पूर्व पुण्य के संयोग से मिलता है। जो धर्मरहित प्रमाद में ही जन्म व्यतीत करता है वह मूढ़ सुवर्ण के थाल में धूल डालता है, अमृत से पर प्रक्षालन करता है और कौए को उड़ाने के लिये चिंतामणी रत्न फेंकता है—ऐसा समझना चाहिये। यह सम्पूर्ण संसार मोह रुप मदिरा से घोर निद्रा में पड़ा हुवा है और उस पैर विकराल यमराज मुँह फाडे खड़ा है। इसकी किसी को भी क्या खबर है कि यह यमराज कब और किसको अपने विशाल उदर में डाल लेगा। इसलिए हे भव्य जनो! मोहरुप निद्रा से जागृत हो धर्म कार्य में उद्यम वनो।

गुरु मुख से देशना श्रवणकर राजा दोनो हाथ जोड़ नम्रता से बोला। हे स्वामी! यह मेरा पुत्र सर्व कलाओं में निपुण है परन्तु वह धर्म से विमुख है। इसलिये हे कृपासिंधु! मेरे इस पुत्र को कभी धर्म रुचि होगी या नहीं?

गुरु ने कहा राजन् ! तू इस के बारे में चिंता न कर। क्योंकि जीव अपने कर्मों के कारण ही धर्मी या अधर्मी होता है। जिसकी जैसी गति होनेवाली होती है वैसी ही उसकी बुद्धि हो जाती है। चाहे सूर्य पूर्व से पश्चिम म उदय होने लगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, मेरु चलायमान हो जाय फिर भी भवितव्यता झूठी नहीं होती। इसलिये जब भवितव्यता परिपक्व होती है तब प्राणी को धर्म पर रुचि उत्पन्न होती है।

यह सुन राजा ने कहा कि हे प्रभु ! जो भवितव्यता पर ही आधार रखा बैठा जाय तो फिर रोग की चिकित्सा और भूखे मनुष्य को भोजन की क्रिया नहीं करना चाहिये क्योंकि भवितव्यता परिपक्व होने पर अपने आप सब ठीक हो जायगा।

यह सुन सूरि महाराज ने कहा हे नरेश ! द्रव्य क्षेत्रादि की सामग्री सिवाय मनुष्य धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता। इस पर एक दृष्टांत कहता हू सो सुनो। एक समय तीन मुनियों ने केवली भगवान के पास आकर पूछा कि हे प्रभु ! हमको मोक्ष मिलेगा या नहीं ? केवली भगवान ने उत्तर दिया कि हे महाभाग्य ! तुम इसी भव में सब कर्मो का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करोगे। ज्ञानी का वचन कभी झूठा नहीं होता ऐसा सोच तीनों मुनि चारित्र छोड़ गृहस्थ बन

विषयसुख भोगने लगे। जब भोगावली कर्म क्षय हो गये तब वे भोग से विरक्त हो अपने किए आचरणों की निंदा करने लगे। पीछे पुनः चारित्र ग्रहण कर शुक्ल ध्यान रुपी अग्नि से कर्म मल का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये। इसी तरह तुम्हारा पुत्र भी कर्म क्षय होने पर इसी भव में धर्म रुचिवाला होगा और फिर तीसरे भव में महाविदेह क्षेत्र में अनेक जीवों का उपकार करने वाला तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष में जायगा।

गुरु से यह वृतान्त श्रवणकर राजा को वैराग्य प्राप्त हुवा। इससे कुमार कनककेतु को राज्य दे बड़े उत्सव सहित संसार का नाश करने वाला निर्मल चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ घोर तपस्या व निर्मल ध्यान से कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया।

कनक केतु राजा नाना प्रकार के विषय सुख भोगता हुवा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बाद एक दिन राजा के शरीर में तीव्र दाहज्वर उत्पन्न हुवा। उसकी पीड़ा से निरन्तर निद्रा रहित अत्यंत दुख पाने लगा। अनेक उपचार करने पर भी व्याधि शाँत नहीं हुई। एक दिन रात्रि में किसी के मुँह से निम्नांक श्लोक सुना कि—

सुखाय सर्वजंतुनाँ प्रायः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥
न धर्मेण बिना सौख्यं, धर्मश्चारंभवर्जनात् ॥३॥

अर्थ-सर्व जंतुओं की प्रवृति सुख के लिये होती है। परन्तु सुख धर्म बिना नहीं मिलता और धर्म भी आरभों को छोड़ने से होता है। साराश यह है कि सुख चाहनेवाले पुरुषों को धर्म की तरफ मन लगाना चाहिये।

व्याधि से पीड़ित कनककेतु राजा ने जब उक्त श्लोक सुना तो वैराग्य उत्पन्न हुआ और सोचने लगा कि यदि मेरी व्याधि शांत हो जायगी तो अनेक आरम्भ और पाप से भरे इस राज्य को छोड़ सवेरे ही शास्वत सुख को देनेवाला चारित्र ग्रहण करूँगा। ऐसे शुभ विचार मात्र से ही राजा का रोग दूर हो गया और उसे सुखपूर्वक नींद आगई। प्रातः काल सब मन्त्रियों को बुला अपना विचार बतलाया। मंत्रियो ने राजा के विचार का अनुमोदन किया। पीछे राजकुमार मलयकेतु को राजसिंहासन पर बिठा सुपात्रों को दान दे अपार धन सद्मार्ग में व्यय किया। जिनमदिर में महान् उत्सव कर बहुत से मन्त्रियों और सामन्तो आदि के साथ श्री शांतिसूरि महाराज के पास चारित्र ग्रहण किया। फिर गुरु से द्वादशागी का अध्ययन कर शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा।

एक दिन गुरु से बीस स्थानक सम्बधी व्याख्यान सुना कि जो कोई अरिहंत की भक्ति सहित बीसस्थानक की आराधना करता है वह अन्त में जिनपद प्राप्त करता है। उसमें भी चौदहवें तप पद की आराधना विधि सहित करता

है उस प्राणी को जैसे लंघन करने से शरीर के उपचित दोषों का नाश होता है वैसे दुष्कर तपस्या से क्लिष्ट कर्मों का नाश होता है। गुरू मुख से व्याख्यान सुन कनककेतु मुनि ने यह अभिग्रह लिया कि जहाँ तक यह शरीर है वहाँ तक निरन्तर द्वादशभेद तप करना, जघन्यचौथभक्त से लेकर उत्कृष्ट छः मास पर्यन्त तपस्या करना। इस तरह विधिसहित त्रिकाल देववन्दन और पारणे आयम्बिल करना। ऐसा अभिग्रह लेकर मुनि निरन्तर सन्तोष और धैर्य से तपस्या करने लगे।

निरन्तर घोर तपस्या करने से मुनि का शरीर तो कमजोर होने लगा परन्तु मुँह का तेज दिन प्रति दिन सूर्य की तरह तेजस्वी होने लगा। एक बार ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड गर्मी में मुनियों के साथ विहार कर शंखपुरी के पास जाकर सूर्य सन्मुख आतापना लेने लगे। उस समय देव सभा में इन्द्र महाराज मुनि की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि अरे! मुनियों में श्रेष्ठ कनककेतु मुनि धन्य है कि जो घोर तपस्या करते हुए भी जरा भी अनेषणीय भातपाणी ग्रहण नहीं करते। ऐसा कह वहीं बैठे २ शकेन्द्र ने भाव पूर्व वन्दना की।

इन्द्र द्वारा मुनि की प्रशंसा सुन वरुण लोकपाल को विश्वास नहीं हुआ इसीलिए मुनि की परीक्षा लेने को उनके पास आया। वहाँ आकर खेर के अंगारे के समान उष्ण रेत

कर दी और जहाँ २ मुनि गोचरी के लिये जाते वहाँ सब जगह गोचरी को अशुद्ध कर देता। इस तरह रात दिन कष्ट होने लगा। फिर भी समता के सिन्धु राजर्षि मुनि विषाद रहित हो सब सहन करते। छः माह तक देव ने उपसर्ग चालू रखा और मुनि बिना आहार के दिन निर्गमन करते। गुरु महाराज ने ज्ञानोपयोग से देवोपसर्ग जान कनककेतु मुनि को दूसरे दिन उसी नगर में ब्रह्मचर्य को पालन करनेवाले धनजय सेठ के घर गोचरी के लिए भेजा। क्यों कि जो निर्मल शीलवान होते हैं उनके यहाँ देव भी उपसर्ग नहीं कर सकते। गुरु महाराज की आज्ञा से दूसरे दिन मुनि धनजय सेठ के घरगोचरी के लिए गये और वहाँ से शुद्ध आहार पाणी ग्रहण किया। यह देख वरुण देव ने उस घर में सुवर्ण की वृष्टि की और प्रत्यक्ष हो मुनिराज की स्तुति कर क्षमा माँग गुरु महाराज के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभु! कनककेतु मुनि को इस घोर तपस्या का क्या फल मिलेगा? इस पर गुरु महाराज ने कहा हे देव! यह मुनि इस तप के प्रभाव से तीर्थङ्कर होंगे। गुरु मुख से यह सुन देव अपने स्थान पर लौट गया। राजर्षि मुनि वहाँ से चल कर चौथे देवलोक के सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र में जिनपद प्राप्त कर चिदानन्द पद प्राप्त करेंगे।

पन्द्रहवीं कथा

राजा हरिवाहन
जो पंद्रहवें सुपात्रदान पद आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

भारतक्षेत्र के कलिंग देश में समृद्धिशाली कंचनपुर नगर था। वहाँ का शौर्यादि गुणालंकृत महान प्रतापी हरिवाहन राजा था। उसके महान बुद्धिशाली सब प्रधानो में मुख्य विरंची नाम का प्रधान था। उसने अपार द्रव्य व्ययकर एक मनोहर देव भुवन समान श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर बनवाया। एक दिन मंत्री महाराज हरिवाहन को मन्दिर में भगवान के दर्शन करने के लिए ले गया। उस समय उस मन्दिर के पास धनेश्वर सेठ के घर नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे और स्त्रियाँ मङ्गल गीत गा रही थीं। यह देख राजा ने मंत्री से पूछा कि आज यहाँ क्या उत्सव हो रहा है? यह सुन मंत्री ने कहा महाराज आज धनेश्वर सेठ के यहाँ पुत्र जन्म का उत्सव है। इसी कारण यह सब धाम धूम है। पीछे मंत्री सहित जिन मन्दिर में जिनेश्वर के दर्शन कर अपने महल में लौट गया। दूसरे दिन राजा पुनः उसी चैत्य में दर्शन करने

के लिए मन्त्री सहित आया । उस समय धनेश्वर सेठ के घर रोने की आवाज सुनी और सब लोगो को शोकातुर देख राजा ने मन्त्री से पूछा कि कल तो यहाँ उत्सव हो रहा था और आज सब क्यो रो रहे हैं?

मन्त्री ने कहा महाराज! जिसके लिये कल उत्सव हो रहा था उसी के लिए आज ये सब रो रहे हैं अर्थात् कल जिस पुत्र के जन्म से उत्सव हो रहा था उस पुत्र की आज मृत्यु हो गई है इसलिए सब रुदन कर रहे हैं।

मन्त्री द्वारा हकीकत सुन राजा को वैराग्य हुआ और सोचने लगा कि प्राणियो के संसारिक सुख केवल दुःख से पूर्ण और दुःख के हेतु रूप है। विविध प्रकार के भोग पानी के बुदबुदे के सामान क्षण में नष्ट होने वाले है। यौवन सरिता के वेग की तरह जल्दी से जानेवाला है। लक्ष्मी विद्युत की तरह चपल है। स्वरूपवान देह रोग से पूर्ण तथा नाशवान है। फिर भी प्राणी मृगतृष्णा के समान सांसारिक सुख को सुख मान, उसी में लीन रहता है। यह सब महामोह का ही प्रभाव है।

इस प्रकार राजा संवेगपूर्ण हृदय से विचार करता है, इतने में खबर आई कि नगर बाहर उद्यान में धनेश्वरसूरि पधारे हैं। पीछे राजा जिनेश्वर के भक्तिपूर्वक दर्शन कर नगर बाहर उद्यान में जहाँ सूरिजी महाराज विराजमान थे वहा प्रधान सहित आकर विनय पूर्वक वन्दन कर सूरि जी महाराज

के सन्मुख बैठ गया गुरु महाराज ने संसार रूप ताप से संतप्त हुए भव्य जीवों को मेघ की वृष्टि समान देशना देना आरम्भ की।

'हे भव्यजनो! दुःख और भय से पूर्ण इस संसार में सुख तो लेश मात्र भी नहीं है क्योंकि द्रव्य में अग्नि और चोर का भय, भोग मे रोग का भय, जय में शत्रु का भय, मान में लघुता का भय, यौवन में बुढ़ापे का भय और बुढ़ापे में मृत्यु का भय है। इस प्रकार संसार में कोई भी समय बिना भय के नहीं है जहाँ भय है वहाँ सुख कैसे हो सकता है? इसलिए हे भव्य जनो! तुम अनन्त सुख को देनेवाले वैराग्य की शरण लो।

इस तरह गुरु मुख से देशना श्रवण कर एवम् अवसर देख राजा ने पूछा कि हे प्रभु! आप कृपा कर बताइये कि धनेश्वर सेठ के घर कल उत्सव और आज विषाद किसलिए हुआ।

गुरु ने कहा राजा यह सब पूर्व कर्म का फल है। इस सेठ ने पूर्व भव में महा मोह के वश हो धर्म बुद्धि से अनेक जीवों को दुःख पहुँचा कर खूब धन खर्च किया था; मिथ्या-दर्शन से शुद्ध देव गुरु के धर्म से पराङमुख हो हरिहरादि कामी और सरागी, गुणहीन देवों के प्रति देवों की बुद्धि, ब्रह्मचर्य रहित परिग्रह धारण कर अनेक प्रकार के आरम्भ

समारम्भ करनेवाले कुगुरु के प्रति गुरु की बुद्धि तथा दयारहित और हिंसा से पूर्ण कुधर्म के प्रति धर्मबुद्धि रखो जो महा मोह के प्रभाव से मिथ्यात्व है। किसी व्याधि से पीडित कोई प्राणी उसी जन्म में दुःखी होता है परन्तु मिथ्यात्व रूपी महा व्याधि से पीड़ित प्राणी तो अनेक जन्म पर्यन्त दुःख प्राप्त करता है। यह समझ मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध देव गुरु और धर्म के प्रति रुचि रखना यही परम श्रेय का कारण है।

इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजाको संवेग हुआ और राजमहल में आकर पुत्र को राज्य दे उत्साह पूर्वक संयम अङ्गीकार किया। समिति, गुप्तियुक्त चारित्र का पालन करते हुए द्वादशांगी का अध्ययन किया।

एक दिन गुरु से देशना में बीस स्थान के बारे में व्याख्यान में सुना कि जो महाभाग्य अन्नपानादि से भक्ति-पूर्वक साधु संविभाग का पालन करता है वह श्री जिनेश्वर की सम्पदा प्राप्त करता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।

यह अधिकार सुन राजर्षि मुनि हरिवाहन ने अभिग्रह लिया कि आज से निरन्तर उत्तम मुनियों को अन्नपानादि देकर उसमें से जो शेष रहेगा वही मैं काम में लूंगा। ऐसा अभिग्रह ले निरन्तर मुनियों की आहार पानी औषधादि से भक्ति करने लगा। एक समय इन्द्र महाराज ने देव सभा

हरिवाहन मुनि की साधु संविभाग पर अनन्य भक्ति देख प्रशंसा की। इस पर शङ्कित हो सुवेल देव मुनि की परीक्षा करने के लिए कपटी साधु का रूप बनाकर श्रीपुरपत्तन में जहाँ हरिवाहन मुनि थे वहाँ तपस्या से क्षीण देहवाला बन पारणा करने के लिए आया। उस समय अपने काम में आने वाला जो आहार था वह उसको दे दिया। पीछे पुनः अपने लिए आहार ला गुरु के पास आलोची सज्जाय कर गोचरी करने बैठा। इतने में उस मायावी देव ने हरिवहन मुनि के देह में अत्यन्त दुःसह वेदना उत्पन्न कर दी। यह वेदना देख गुरु आदि साधु अत्यन्त खेद करने लगे। पीछे वैद्य के बताये अनुसार किसी गृहस्थ के घर से जल्दी औषधि ला मुनिराज को लेने के लिए कहा। परन्तु मुनि ने मना कर दिया। इसलिए गुरु ने कारण पूछा। उत्तर में मुनि ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभु! यह औषध किसी सुपात्र मुनि को दिए बिना मैं ग्रहण नहीं करूँगा चाहे इससे भी अनन्तगुणी वेदना हो और कदाचित प्राण भी चले जाय। क्योंकि जो यह अन्य मुनियों के दिये बिना ग्रहण करता हूँ तो मेरे व्रत का भंग होता है और मैं दुर्गति को प्राप्त करनेवाला होता हूँ। अतिथि संविभाग व्रत के पालन करने से बाहु मुनि समस्त लोक के स्वामी हुए और नन्दीशेण मुनि ने वासुदेव की पदवी प्राप्त की। इसलिए हे प्रभु मुझे चाहे जितनी असह्य

यह जीव कषाय के वश आर्त और रौद्रध्यानकर जिस प्रकार अरण्य में पशु भ्रमण करता है वैसे ससार में अनेक योनियों में परिभ्रमण करता है। ऐसी कोई योनी, कोई कुल, कोई जाति, कोई स्थान नहीं जहाँ इस जीव ने अनन्त वार जन्म मरण नहीं किया हो। जो मनुष्य पापी, निर्दयी और कुरुप होता हैं वह नरक से आया हैं ऐसा समझना चाहिए। जो कपटी और निरन्तर क्षुधा से आतुर चित्तवाला होता हैं उसे तिर्यच गति से आया हुवा समझना चाहिए। जो सुबुद्धि वाला, ज्ञानी और विवेकी हो उसे मनुष्य गति से आया हुवा जानना चाहिए सौभाग्यवान, प्राज्ञ और कवि हो उसे स्वर्ग से आया हुवा समझना चाहिए। इसी प्रकार जो प्राणी तीव्र कषायी, अति- आरभ परिग्रह और विषय में रत तथा मासाहार में लुब्ध हो उसे नरकगामी जानना। मायावी, कटुभाषी, और अविरति हो उसे तिर्यंच गति में जानेवाला समझना। दयालु, सत्यभाषी, दानी और सदाचारी हो उसे मनुष्य गति प्राप्त होती है। सुपात्र को दान देनेवाला, मिष्टभाषी त्रिकाल जिनपूजा करनेवाला और सम्यक् क्रिया करनेवाला सुर गति को प्राप्त करता है।

यह सुन कुमार बोला कि हे प्रभु कृपा कर यह बतलाइये कि मुझे यहाँ अचानक मूर्छा किस कर्म के उदय से आई। गुरु ने कहा कुमार यह मैं बताता हूँ सो तू सुन। पहले धातकी खण्ड में परियतन नगर में घमडी और क्रोधी दुर्वासा

यति रहता था। वहय तिचर्या में निरन्तर प्रमादी और शातादिगारंव में लुब्ध था। एक बार गुरु के साथ सांकेतपुर जाते हुए मार्ग में आसनपुर ग्राम के नजदीक गुरु ने दूसरे बाल ग्लानादि मुनियों को तृषातुर देख दुर्विनीत दुर्वासा मुनि को कहा कि तुम इन तृषातुर यतियों के लिए इस पास के गांव से प्रासुक जल ले आओ। वह सुन क्रोध से विवेक शून्य हो वह गुरु को जो मन में आया बोलने लगा। दूसरे स्थविरों के मृदु वचनों से समझाने पर शान्त होने के बजाय वह उलटा सारे गच्छ से द्वेष करने लगा। पीछे वह गच्छ छोड़ वहां से अकेला ही आगे चला गया। आगे अरण्य में रौद्र ध्यान के परिणाम से मर कर सातवीं नरक में तैंतीस सागरोपम आयुष्यवाला नारकी हुवा। बिना कारण मुनि की निंदा और द्वेष करने से बांधे हुए तीव्र कर्मों के विपाक से उसे वहाँ अत्यंत वेदना सहनी पड़ी। आयु पूर्ण होने पर वहाँ से निकल अनेक भव भ्रमण कर अत्यंत कष्ट सहन करते २ बहुत से कर्मो को क्षय किया। पीछे कौटुम्बिक ग्राम में मासोपवासी मुनि हुवा। कुछ समय तपस्या कर, सुख प्राप्त करने की जिज्ञासा से नियाणा कर वहाँ से मर कर व राजकुमार हुवा है। पूर्व में की हुई तपस्या के पुण्य से यह ऋद्धि प्राप्त हुई है और जो मुनि निंदा का कर्म बांधा था वह भोगते हुए जो अवशेष रहा वह आज तेरे को उदय आया जिससे तुझे मूर्छा आई। मुनि वंदना से उस कर्म का अब नाश हो गया है।

इस प्रकार गुरु मुख से अपना पूर्व भव सुन कुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुवा। इससे संवेग प्राप्त कर गुरु से संसार समुद्र को पार करने में प्रवहण समान निर्मल चारित्र ग्रहण किया। अपने पति ने चारित्र अंगीकार कियाऐसा सुनकर राजकुमारी ने भी चारित्र ले लिया।

राजर्षि मुनि ने विनय पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन किया। अभ्यास करते हुए एक दिन गुरु से बीस स्थानक पद की महिमा सुनी कि जो कोइ भव्यात्मा जिनेश्वरादिक बीस स्थानक की सम्यक्त्व पूर्वक विधि सहित एकाग्रचित्त से आराधना करता है वह पुण्यशाली, जगदाधार, तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है। उसमें भी सोलहवें वैयावच्च पद की आराधना प्रधान है। उसकी आराधना गुरु, संघ, ग्लान, तपस्वी आदि को अन्न, पानी औषध भैषजादि से वैयावच्च करने से होती है और उससे जिन नाम कर्म का बंध होता है।

यह गुरु मुख से श्रवण कर जीमूतकेतु मुनि ने अभिग्रह लिया कि आज से मै निरन्तर शुद्ध भाव से गुरु, ग्लान आदि की वैयावच्च स्थिर चित्त से करूंगा।

एक बार देव सभा में इन्द्र महाराज ने उन राजर्षि मुनि की प्रशंसा की। यह बात सोमनाम लोकपाल देव को नहीं रुचि और मुनि की परीक्षा करने के लिए दाह ज्वर से पीडित देह वाले मुनि का रुप धारण कर जहाँ जीमूतकेतु मुनि थे

वहाँ आया। मुनि ने उसे उपाश्रय में रखा और पीछे उसके आहार के लिए जीभूतकेतु गोचरी लेने के लिये गये। तब देव ने दूसरे मुनि का वेष बना कर मार्ग में राजर्षि मुनि से मिला और अति क्रोध युक्त वचनों से तर्जना करने लगा। फिर भी मुनि जरा भी खिन्न नहीं हुए।

पीछे भानुश्रेठ के वहाँ से माधुकरी भिक्षा ग्रहण कर उपाश्रय में आया और ग्लान मुनि को आहार कराया। पीछे दाह ज्वर की उपशान्ति के लिये किसी वैद्य को बुलाया। वैद्य ने व्याधि की परीक्षा कर कहा कि इस मुनि को पाकाँ फल का रस जो मिरची के रस जैसा होता है लाकर दिया जावे तो व्याधि दूर हो सकती है। यह सुन जीभूतकेतु मुनि लेने के लिये नगर में घर २ घूमने लगे परन्तु देव माया से कहीं भी वह नहीं मिली। इससे खिन्न हो पीछे उपाश्रय में आया। अब ग्लान मुनि क्रोधित हो विकराल मुखाकृति कर तीव्र और दुःसह वचनों से तर्जना करने लगा। फिर भी राजर्षि मुनि जरा भी खेद रहित ग्लान मुनि के चरणों में नमस्कार कर कहने लगा। कि आज मुझ से आपका वैयावच्च नहीं हुवा इसका मुझे बड़ा दुख है और यह मेरे अंतराय कर्म का कारण है। यह सुन वह ग्लान मुनि अवधिज्ञान से मुनि के भाव जानने लगा तो शुद्ध भाव युक्त देखा। इसलिए देव प्रकट हो राजर्षि मुनि के चरणों को स्पर्श कर कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ ! आपको धन्य है। आप वास्तव में समता के सिंधु

हो। मैंने आपकी जो तर्जना की उसके लिए क्षमा करें। ऐसा कह देव अपने स्थान को लौट गया। जीमूतकेतु मुनि ने शुद्ध भाव से वैयावच्च किया जिससे जिन नाम कर्म उपार्जन किया। निरतिचार चारित्र का पालनकर अन्त में अनशन कर विजय विमान में देव हुए। वहाँ से चव कर श्री कच्छ विजय में तीर्थंकर हो मोक्ष प्राप्त करेंगे। यशोमति आर्या उन्ही की गणधर होकर अव्यावाध मोक्ष का सुख प्राप्त करेगी।

सतरहवीं कथा

राजापुरन्दर

जो सतरहवें संयम पद आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

वाणारसी नगरी में विजयसेन राजा न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करता था। उसके पद्ममाला और मालती नाम की दो रानियां थी। उनमें पटराणी पद्ममाला के कामदेव को भी पराभव करे ऐसा पुरन्दर नामका कुमार था। धीरे २ वह कुमार बड़ा हुआ और समस्त कलाओं में निपुण हो यौवनावस्था में पहुँचा।

एक दिन कुमार अकेला हो आरण्य में घूमने गया। वहाँ उसने एक मुनि को देखा। इसलिए उनके पास जाकर वन्दना कर

सन्मुख बैठ गया। इसलिये उने गुणनिधि मुनि ने देशना दी कि सर्व संपदाओं का कारणरूप जो धर्म है उसका मूल बीज पर स्त्री का त्याग करना है। उन पुरुषों को धन्य है जो देवांगना समान स्वरूपवाली और हथनियों की तरह मस्त चाल से चलने-वाली प्रमदाओं को देखकर अपने चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होने देते। इसी तरह उस स्त्री को धन्य है जो कामदेव समान अन्य पुरुष को देख जरा भी अपने मन को शिथिल नहीं होने देती और बिधाता से मिले पति में ही संतोषवृत्ति रख आनन्द मनाती है। इस तरह जो स्त्री पुरुष शीलव्रत में दृढ़ रहते हैं वे अनेक सम्पदाओं के भोगनेवाले होते हैं।

इस प्रकार मुनि की देशना सुन कुमार पर स्त्री त्याग का व्रत लेकर अपने स्थान पर लौट गया। लिए हुए व्रत को जरा भी अतिचार न लगे इस प्रकार दृढ़ मन से छोटी को बहिन और बड़ी को माता समान गिन निर्मल भाव से व्रत कापालन करने लगा। अनेक मृगलोचनी ललित ललनाए कुमार को राग से देखती परन्तु कुमार तो उसके सामने दृष्टि भी नहीं डालता।

एक बार कुमार की सौतेली माता मालती राणी अनंग समान अद्भुत रूपवाले कुमार को देख उस पर अनुरक्त हो गई। शशी समान कांतियुक्त यौवनपूर्ण कुमार को जैसे २ सराग से देखती वैसे २ वह उस पर विशेष आसक्त हो विरह

व्यथा भोगने लगी।' इस विरह व्यथा से मालती राणी का शरीर क्षीण होने लगा। उदासीन वदन से निश्वास डाल कुमार को चाहने लगी। एक दिन कामाग्नि से अधिक संतप्त और हिताहित विवेक शून्य चित्त वाली राणी ने दासी को भेज कुमार को बुलाया। कुमार को आता देख मालती राणी हर्ष से खड़ी हुई। प्रफुल्लित हो उसके सामने गई और आदर पूर्वक बोली—कुमार आओ, पधारो, बहुत दिनों में आपके दर्शन हुए। क्या आप विदेश गये थे ?

कुमार ने कहा—नहीं, यहीं था। बिना कारण बाहर नहीं निकलता। परन्तु माताजी आपने आज मुझे क्यों बुलाया ?

कुमार! आप मुझे माताजी कह कर कैसे बुलाते हो? क्या मैं तुम्हारी माता होती हूँ। तुम्हारी माता तो पद्ममाला है। ऐसा कह कुमार पर कटाक्ष किया। यह देख कुमार समझ गया कि रानी विकार के वशीभूत हो अपनी स्थिति को भूल गई है। यह समझ वह बोला—पद्ममाला तो मेरी जन्म देने वाली माता है और आप अपरमाता हो। सिर्फ इतना ही फर्क है। परन्तु इससे तुम माता नहीं हो ऐसा नहीं हो सकता।

राणी ने कहा नहीं, नहीं मैं और तुम तो समान उम्र वाले हैं इसलिए तुम्हारा और मेरा यह सम्बन्ध शोभा नहीं देता। अपना संबंध तो — इतने में कुमार ने राणी को

आगे बोलने से रोक कहने लगा—माताजी ! सरी उलटी सीधी बातें ? करना छोड़ यह बताओ कि मुझे यहां क्यों बुलाया है

रानी स्मित वदन से कटाक्ष करती हुई बोली चतुर कुमार ! क्या तुम अपनी इतनी बातचीत से मेरे बुलाने का मतलब नहीं समझे ?

कुमार दुखी होकर बोला—नहीं मैं तो कुछ भी नही समझा स्पष्ट रूप से समझाओ ।

राणी तीव्र कामाग्नि से संतप्त हो कुमार का हाथ पकड़ बोली—रसीले कुमार ! जो नहीं समझे हो तो अब मैं स्पष्ट कहती हूँ कि मेरा और आपका सम्बन्ध माता व पुत्र का नहीं परन्तु प्रेमी व प्रेमिका का रखना चाहती हूँ । आपके पिता वृद्ध हो गये हैं और मुझे जरा भी प्रिय नहीं है । इसलिए मेरी उछलती नदी के पुर समान यौवन को भोगने वाले बनो । आपकी मोहक मूर्ति मेरे हृदय में बहुत दिनों से रम रही है । आज आपसे मिलने पर मैं भाग्यशाली हुई हूँ । हे दयालु कुमार ! मेरी इच्छा को भंग नहीं कर मुझे स्वीकार कर मेरे दुःख को शांत करो । मैं आपकी दासी हूँ ।

राणी के वचन सुन कुमार कान पर हाथ रख बोला—माताजी ! माताजी ! आप काम रूपी अग्नि से पीडित हो हिताहित एवम् धर्माधर्म से विवेक शून्य चित्त वाली हो इन्द्रिय जन्य क्षणिक सुख की लालसा के लिए इस भव और पर भव

में महान् दुःख हेतु रूप विषय रूपी विष पीकर क्यों दुःख मोल लेती हो? पर स्त्री लम्पट पुरुष और पर पुरुष लम्पट स्त्री को स्वप्न में भी लेश मात्र सुख नहीं मिलता। गुरु पत्नि, पिता पत्नि, बंधु पत्नि और पुत्र पत्नि के साथ जो अधम पुरुष संगम करता है वह नीच भयंकर रौरव नर्क में पड़ अनन्त दुःखों का भोगने वाला होता है। विष खाकर मर जाना अच्छा, अग्नि में प्रवेश करना भी उत्तम और पर्वत से कूद कर प्राण गवाना भी श्रेष्ट है परन्तु पर स्त्री के साथ संगम करना जरा भी ठीक नहीं है। कृत्याकृत्य से विवेक शुन्य चित्त वाली माता! जरा हृदय में विचार कर मन को काबू में कर विकार से विमुख हो आर्हतोक्त धर्म में मन को लगाओ ऐसा कह कुमार जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते वापिस लौट गया।

इस तरह फटकार कर चले जाने पर पापीणी मालती राणी ने स्त्री चारित्र शुरू किया। अपने हाथ से ही अपनी कंचुक तोड डाली, हृदय पर नख के निशान कर लिए। पीछे रोती हुई महल के एकान्त स्थान में रुष्ट होकर सो गई। थोड़ी देर बाद उसी राणी के महल में राजा आया। राजा ने राणी को क्रोधयुक्त और एकान्त में उदासीन व रोती हुई देख मीठे वचन से पूछा, प्रिया! आज यह विचित्र रूप क्यों धारण किया है? क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है? इस प्रकार

मृदु बचन से बुलाने पर भी कपट मूर्ति राणी ने एक शब्द भी नहीं कहा। पुनः राजा ने सोगन दे स्नेह पूर्वक पूछा। प्यारी! बोल तो सही, आज ऐसी क्यों हो गई हो? क्या किसी ने तेरी आज्ञा का अनादर किया है? जो भी बात हो वह शीघ्र मुझे कहो। मैं उसे उचित शिक्षा दुंगा। यदि तू कुछ नहीं कहेगी तो मुझे क्या मालूम होगा।

राजा ने सोगन दे बहुत आग्रह किया तब वह पापी पिशाचिनी गद्गद् हो बोली मैं क्या कहूँ मेरे शरीर से क्या आप को पता नहीं लगता। देखो! यह मेरे कंचुक को चीर डाली, हृदय पर नख के कितने चिन्ह हो रहे हैं।

राणी का इस प्रकार का बदन देख राजा क्रोधित हो बोला। बता, जल्दी बता, किस नर पिशाच चांडाल ने यह अकार्य किया? मैं उस से इस का बदला अभी लूँगा।

राजा को ठीक स्थिति में देख, राणी बोली। महाराज! दूसरे की क्या ताकते है जो अन्तःपुर में आ सके। परन्तु काम कुठाम को नहीं जानने वाले कामांध नर पिशाच आपके कुमार ने जब मैं यहां सो रही थी तो आकर मझे पकड़ी और यह हालत करदी।

राणी की उक्त बात सुन राजा क्रोधान्ध हो लाल २ नेत्र कर वहां से शीघ्र पद्ममाला राणी के महल में जहां कुमार था

आया और कुमार को पुकार बुलाया। पुरन्दर कुमार पिता की क्रोधित आवाज सुन मन में समझ गया कि अवश्य सौतेली माता के कारण से ही कुछ नई पुरानी बात हुई है। फिर अपने महल से बाहर आकर दोनों हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक प्रणाम कर बोला—पिताजी! क्या आज्ञा है? राजा क्रोधित देखकर कुमार नीची गरदन कर खड़ा रहा। इस से राजा को विशेष सन्देह हुआ कि अपराधी मनुष्य कभी सन्मुख नहीं देखता, इसलिए अवश्य इसने ही यह कुकर्म किया है। ऐसा समझ राजा अत्यन्त क्रोधित हो कहने लगा। अरे नराधम! नीच कुलांगार कुपुत्र! मुझे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि तु ऐसा पिशाच वृत्तिवाला पुरुष है।

कुमार ने कहा—पिताजी। मेरा दोष क्या है वह आप कहो। मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर कोई अकार्य नहीं किया। राजा ने कहा अरे नीच! तू मुख से मीठा बोलने वाला परन्तु हृदय में हलाहल जहर भरा हुआ पिशाच है। तू आगे बोलना बन्द कर, चाँडाल भी जो काम नहीं करता वह कार्य कर के सत्यवादी बन कर पाप छिपाना चाहता है। कुमार ने कहा—पिताजी! आप क्या कहते हैं वह तो मेरी समझ में कुछ आता नहीं। चाँडाल से भी अधर्म कार्य करने में मेरी प्रवृत्ति हो ऐसा स्वप्न में भी होना कठिन है। इतना होने पर भी आप स्पष्ट कहो कि मेरे से कौनसा अकार्य हुआ है। राजा ने कहा—अरे पलीत! क्या तु स्पष्ट कहलवाना

चाहता है । चांडाल ! तू तेरी सौतेली माता के साथ अगम्य गमन करते हुए भस्मीभूत क्यों नहीं हो गया ? राजा के ये शब्द सुन कर कुमार कान पर हाथ दे चिल्ला कर बोला अरे प्रभु ! यह मैं क्या सुनता हूं । इतने में राजा कहता है कि तू क्या सुनता है, तू तेरे किये काके कार्य को सुनता है । अरे कुलांगागार कुमार ! तू पुत्र होने से अवध्य है इसलिए मृत्यु दण्ड नहीं देता हूं परन्तु जहां तक मेरी आज्ञा चलती है वहां तक की भूमि में तुझे अपना पैर भी नहीं रखना चाहिए । कुमार ने कहा—पिता जी ! आप इस विषय में सत्यासत्य तो मालूम कीजिए कारण मैं बिल्कुल अपराधी नहीं हूं । राजा ने कहा—अब एक शब्द बोले बिना अभी ही नगर से बाहर चला जा नहीं तो मेरी क्रोधाग्नि में जल कर भस्म हो जायगा । अब कुमार ने सोचा कि विशेष खुशामद करना व्यर्थ है । ऐसा सोच माता-पिता को प्रणाम कर हाथ में तलवार ले एकदम नगर बाहर निकल गया । पद्ममाला राणी पुत्र के वियोग से दुःखी हो मुर्छित हो गई । पीछे सावधान हो रुदन करती हुई विचारने लगी कि अवश्य मेरे पुत्र को देश निकाला दिलाने वाली मेरी सौत मालती का ही यह काम है । ऐसा सोच शोक पूर्ण हृदय से दिन व्यतीत करने लगी ।

कुमार वहां से निकल जंगल की तरफ चला । वहां एक पल्लिपति के साथ युद्ध हुवा । इस में पल्लिपति को जीत कुमार

आगे बढा। अन्त में वह नदी पुर के उद्यान-के पास आया। वहा सुवर्णमय दंड कलश और ध्वजा से सुशोभित श्री ऋषभ देव भगवान का मन्दिर देखा। इसलिए शुद्ध जल से स्नान कर भाव पूर्वक उल्लसित हृदय से भगवान की सेवा की। पीछे आनन्दपूर्वक हृदय से भगवान की प्रतिमा के-सन्मुख स्तुति करने लगा। इतने में वहाँ कोई सुन्दर वस्त्राभूषण से विभूषित देव समान काति वाला पुरुष आया। उसे देख कुमार स्तुति पूर्णकर बाहर आकर उस पुरुष को प्रणाम कर मधुर वचन से बोला—अहो! भाग्यशाली! आप कौन हैं? और यहाँ अचानक अकेले आपका आगमन कैसे हुवा है? यदि कोई आपत्ति नहीं हो तो अपना वृत्तान्त कहो।

कुमार के विनययुक्त मधुर वचनों से आकर्षित हो आया हुआ दिव्य पुरुष स्नेहपूर्वक बोला—कुमार! मैं सिद्धगिरि पर रहनेवाला विद्या सिद्ध पुरुष हूँ; तेरे पुण्य प्रताप से विद्या देवी की आज्ञा से मैं तुझे सर्व अर्थ को देने वाली त्रैलोक्य स्वामिनी नामक विद्या देने आया हूँ। वह विद्या दशांग होम कर विधि सहित एक लाख जप करने से तुरन्त सिद्ध होगी। ऐसा कह उस पुरुष ने वह विद्या कुमार को दी। कुमार ने विधि अनुसार जाप कर विद्या सिद्ध की पीछे वहाँ से चलकर कुमार नदीपुर नगर में गौरी वैश्या के घर पाँच सौ मोहरें दे रहने लगा। विद्या के प्रभाव से खूब द्रव्य

प्राप्त कर वह द्रव्य हमेशा दूसरे मनुष्यों को दान में दे देता। इससे नगर में उसकी कीर्ति फैलने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर उसकी नंदन मंत्री के पुत्र के साथ मित्रता हो गई।

एक दिन दोनों मित्र आनन्द से वार्तालाप कर रहे थे इतने में राज्य भवन की ओर कोलाहल सुन कुमार ने मंत्री के पुत्र से पूछा कि हे मित्र यह कोलाहल किस कारण हो रहा है? मंत्री पुत्र ने कहा—आज सरस्वती समान सौन्दर्यवाली राज-कुमारी बंधुमति अपने महल के झरोखे पर सखियों सहित बैठी थी उस समय आकाशमार्ग में जाते हुए किसी विद्याधर ने उसे देख, उस पर मोहित हो उसका हरण कर लिया है। इससे राजा को खबर होते ही सब सुभटों को उसे पकड़ लाने को आज्ञा दी परन्तु वह तो आकाशमार्ग से न जाने कहाँ चला गया और सुभट यहीं रहकर आवाज कर रहे हैं उसी का यह कोलाहल है। अब ऐसा कौन है जो उस कन्या को ला सके?

उपरोक्त हाल सुन पुरन्दर कुमार बोला कि हे मित्र तू राजा से जाकर कहना कि मेरा मित्र राजकुमारी को लाकर देगा।

कुमार के कहने से मन्त्री पुत्र ने राजा के पास जाकर यह बात कही, इसलिए राजाने पुरन्दर कुमार को आदर से बुलाकर कहा हे—वीर कुमार! जो आप मेरी प्रिय पुत्री को उस पापी विद्याधर के पास से छुड़ाकर लाओगे तो उस कन्या का विवाह आपके साथ कर दूंगा।

कुमार ने कहा—महाराज सात दिन में राजकन्या को ढुंढकर आपके पास ले आऊँगा। यह मै प्रतिज्ञा करता हूँ। यह प्रतिज्ञा कर राजा की आज्ञा ले कुमार अपने स्थान पर आया। वहाँ आकर विश्व स्वामी को विद्या का ध्यान कर एक दिव्य विमान बनाकर उसमें बैठ मन में सोचने लगा कि जहाँ हरण की हुई राजकन्या हो वहाँ पहुँच जाऊं। ऐसा विचार करते ही वह विमान आवाज करता हुआ आकाशमार्ग में वैताढ्य पर्वत परउड़ चला और क्षण भर में लपट मणिचूड़ विद्याधर की गंध समृद्धि नगरी में जहाँ राजकुमारीको छिपा रक्खा था वहाँ आकर रुक गया। इतने में मणिचूड़ विद्याधर भी वहाँ आ पहुँचा। वह कुमार को देख विश्व स्वामी की विद्या के प्रभाव से घबरा गया। इसलिए कुमार से बिना कुछ कहे सुने राजकुमारी को उसके सुपुर्द कर उसका मित्र बन गया। पीछे वहाँ से राजकन्या को लेकर पुरन्दर कुमार ने नदीपुर नगर में आकर राजा राणी को कन्या सुपुर्द की। राजा ने भी अपने वचन के अनुसार बड़े ठाठ बाट से पुरन्दरकुमार के साथ बन्धुमति का पाणीग्रहण संस्कार किया। कन्यादान में बहुत धन दिया और एक सात खण्डवाला महल रहने को दिया। विविध प्रकार के भोग भोगता हुआ कुमार सुख पूर्वक वहाँ रहने लगा।

एक दिन उस नगर के उद्यान में-तीन ज्ञान को धारण करने वाले अनेक गुणों के समुद्र श्रीमलयप्रभ आचार्य अनेक

मुनियों के साथ पधारे। उस समय पुरन्दरकुमार सहित राजा सुरि महाराज को वन्दन करने गया। विनयपूर्वक प्रदक्षिणा दे सब अपने २ उचित स्थान पर बैठ गये तब गुरू महाराज ने देशना आरम्भ की।

अहो? भव्यजनो? सैकड़ों भवों के बाद प्राप्त हुए, इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर जो प्राणी किसी भी प्रकार का सुकृत नहीं करता और केवल प्रमाद में अपना जीवन बिताता है, वह अनन्त संसार में भ्रमण करता है। जो प्राणी पापानुबन्धी पुण्य करता है वह किंपाक फल की तरह फल प्राप्त करता है और जो भाग्यशाली पुण्यानुबन्धी पुण्य करता है वह कल्पतरु की तरह फल प्राप्त करता है। सब प्राणियों पर अनुकम्पा, विधि सहित वीतराग देव की पूजा वगैरह करने से प्राणी पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करता है और वही प्राणी जिनेश्वर भाषित शुद्ध धर्म प्राप्त कर सकता है। धर्म दो प्रकार का है। एक समकित मूल बारह व्रत रूप गृहस्थ धर्म और दुसरा पंच महाव्रत रूप साधु धर्म है। इस प्रकार के धर्म का सेवन करने से प्राणी अन्त में अविचल सुख प्राप्त करता है। ऐसा समझ हे भव्यजनो? तुम धर्म में प्रवति रखो।

गुरू मुख से देशना सुन पुरन्दरकुमार ने सम्यकत्वमूल बारह व्रत अंगीकार किये। पीछे गुरु को वन्दना कर सब अपने २ स्थान पर गये।

एक दिन उसी नगर से समुद्रदत्त सेठ अनेक वस्तुएँ लेकर वाणारसी नगरी में व्यापार करने गया। कुछ दिनों में सेठ ने नगर में विविध प्रकार के किराने का व्यापार कर खूब धन उपार्जन किया। एक दिन वह सेठ राजसभा में राजा को भेंट देने गया। वहा प्रसंगवश बातचीत करते हुए राजा विजयसेन के सामने अपने नगर में रहनेवाले पुरन्दरकुमार की प्रशंसा की। यह सुन राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योंकि कुमार के जाने के कुछ दिनों बाद राजा को मालूम हो गया कि यह सब नाटक मालती राणी का था और कुमार निर्दोष है। ऐसा मालूम होने पर बिना कारण कुमार को देश निकाला देने से राजा को बहुत दुःख था। सेठ के द्वारा कुमार का वृत्तान्त सुन तुरन्त राजा ने कुमार को बुलाने के लिये पत्र लिखकर आदमी को नन्दीपुर भेजा।

राजा का पत्र लेकर आदमी थोड़े दिनो में नन्दीपुर पहुँचा और राजा का दिया हुआ पत्र कुमार को दिया। कुमार पिता के पत्र को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। पिता ने शीघ्र आने को लिखा इसलिए पुरन्दरकुमार अपने श्वसुर की आज्ञा ले पत्नि सहित विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान बना उसमें बैठ मार्ग में आने वाले तीर्थों की भावपूर्वक यात्रा करता हुआ पिता की राजधानी वाणारसी नगरी में आया। राजा ने कुमार का उत्सव सहित नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता को नमस्कार किया। बंधुमति ने

भी सास-श्वसुर को विनयपूर्वक नमस्कार किया। पुत्र वधु और पुत्र की ऋद्धि को देख माता-पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे राजा ने बड़े ठाठ बाट से कुमार को राज्यासन पर आरूढ कर स्वयं ने श्रीमलयप्रभाचार्य से चारित्र ग्रहण किया।

पुरन्दर कुमार न्याययुक्त प्रजा का पालन करते हुए विद्या के प्रभाव से अनेक गर्विष्ट राजाओं को आधीन कर, जगह २ मनोहर जिनालय बनाकर, भावपूर्वक वीतराग की सेवा भक्ति करता हुआ सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार बहुत समय तक राजसुख भोगने पर शरीर का तेज और बल क्षीण करनेवाले बुढ़ापे को आया जानकर बंधुमति से उत्पन्न राजकुमार जयन्त को राज्यासन पर स्थापित कर पाँच सौ राजाओं के साथ उत्साह पूर्वक अपने पिता के पास दीक्षाली और बन्धुमति ने भी चारित्र लिया। पुरन्दर मुनि के विधि पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन कर गुरु से बीस स्थानक की महिमा सुन श्रीसंघ की भक्ति करने का कठिन अभिग्रह लिया। फिर निरन्तर यथोचित्त श्रीसंघ की भक्ति भावपूर्वक करने लगा। एकबार किसी नगर से श्रीसिद्धगिरी की यात्रा करने के लिए संघ निकला। उसके साथ पुरन्दर मुनि वगैरह साधु समुदाय भी था। उस समय मार्ग में मुनि की परीक्षा करने के लिए इन्द्र महाराज आए। उन्होंने संघ के सब मनुष्यों का द्रव्य व भोजन हर लिया। और सामने से चोरों का समूह संघ को लूटने के लिए हथियारबंद

आता हुवा संघ के मनुष्यों ने देखा। इस प्रकार दोनों प्रकार के उपद्रव से दुखी हो संघ के मनुष्य चिंतित हो श्री मलयप्रभ आचार्य को नमस्कार कर कहने लगे—हे प्रभु! आप कृपा कर अचानक पड़े हुए संघ के कष्ट को दूर करो। तब आचार्य महाराज ने कहा कि तुम अनेक लब्धियों से युक्त पुरन्दर मुनि को विनति करो। वह अपनी लब्धियों से संघ के उपद्रव को दूर करेंगे। आचार्य महाराज के कहने से सब पुरन्दर मुनि से विनति करने लगे।

श्रीसंघ की विनति स्वीकार कर गुरु महाराज की आज्ञा ले राजर्षि मुनि ने अपनी लब्धि के प्रभाव से संघ में सुवर्ण की वृष्टि की। उसमें से सब आदमियों ने जितना चाहिए उतना सोना ले लिया। लूटने आने वाले चोरों के समूह को रास्ते में ही स्थभित कर दिया जिससे वे आगे पीछे चलने में असमर्थ हो गये। धन प्राप्त हो जाने से पास के गाँव से भोजन की व्यवस्था कर संघ आगे यात्रा करता करता तीर्थ के पास पहुँचा। मार्ग में स्थभित हुए चोरों को प्रतिबोध दे मुक्त किया। इस प्रकार श्री संघ को पुरन्दर मुनि ने उपद्रव रहित किया। यह जान इन्द्र आचार्य महाराज के पास आ प्रगट हो नमस्कार कर बोला—हे करुणा समुद्र! संघ को संकट में डालने का काम मेरा ही था और यह मैंने पुरन्दर मुनि की परीक्षा लेने के लिए किया था इसलिये आप मुझे क्षमा करें। इसके सिवा

आप यह बतावें कि श्रीसंघ को भक्ति करने से इन मुनि ने कौनसा पुण्य उपार्जन किया ? यह सुन आचार्य महाराज बोले हे सुरेश ! इस मुनि ने संघ की भक्ति करने से त्रैलोक्यपूज्य जिन नाम कर्म उपार्जन किया है । इस प्रकार श्रीसंघ की भक्ति का फल सुन देवेन्द्र मुनि के गुणों की प्रशंसा कर अपने स्थान को गया । राजर्षिमुनि जीवन पर्यन्त सतरहवें स्थानक की भली प्रकार आराधन कर अन्त में महाशुक्र देवलोक में देवता हुए वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर होंगे और बंधुमति का जीव उनका प्रथम गणधर होगा ।

अठारहवीं कथा

राजा सागरचन्द्र

जो अठारहवें अपूर्व श्रुत पद आराधन से तीर्थङ्कर हुवे

इस भरत क्षेत्र में मलयपुर नामक विशाल नगर था । वहाँ न्याययुक्त प्रजा का पालन करनेवाला अमृतचंद्र राजा राज्य करता था । उस के चंद्रकला समान उज्वल रूप और शील वाली चंद्रकला राणी से उत्पन्न लक्षणोपेत कामदेव समान रूप वाला सागरचंद्र नाम का कुमार था । दिन प्रति दिन वह कुमार विविध प्रकार की कलाओं का अभ्यास कर यौवन वय में पहुँचा ।

अपने गुणों से माता पिता तथा दूसरे सब मनुष्यों का वह अत्यंत प्यारा हो गया। वह निरन्तर लोगों का उपकार करने का ध्यान रखता था इसलिए उसकी कीर्ति भी सब ओर फैल गई।

एक दिन एक पंडित ने राजकुमार को आर्यागीति सुनाई आर्यागीति सुन कुमार ने पंडित को पाँच सोना मोहर दी और वह गीत कंठस्थ करलिया। गीत इस प्रकार था,

अप्रार्थित मेव यथा, समेति दुःख तथा सुखमपीह।
तंत्यक्त्वा समोह, प्रयतध्व धर्म एव बुधाः ॥१॥

अर्थ—जिस तरह प्रार्थना किए बिना दुःख आता है उसी तरह सुख भी जगत में बिना मागे प्राप्त होता है। इसलिए हे बुद्धिमान पुरुषों मोह का त्याग कर धर्म में रुचि रखो।

यह श्लोक कंठस्थ कर निरन्तर उसी का स्मरण करने लगा। एक दिन कुमार अपने मित्र सहित उद्यान में क्रीड़ा करने गया। वहाँ कोई पूर्वजन्म के बैरी देवता ने कुमार का हरण कर अथाह जल से पूर्ण समुद्र में फेंक दिया। परन्तु पूर्व पुण्य के सयोग से काष्ट पाटिया हाथ में आ जाने से उसके आधार से तैरता २ सात दिन में समुद्र किनारे पहुँचा। वहाँ से निकल आगे जाते हुए अमरद्वीप पहुँचा। वहाँ उक्त श्लोक को स्मरण करता हुवा भ्रमण करने लगा। इतने में शीतल छाया वाला आम्र फलों से युक्त आम्रवृक्ष देख उसकी

छाया में आकर पके हुए आम्र के फल तोड़ खाने लगा। सात दिन से भूखे होने के कारण कुमार ने आनन्द से वे फल खाये। खाते २ विचारने लगा कि कहाँ मेरी सुख से पूर्ण राजधानी और कहाँ यह अपरचित उजाड़ स्थान? कर्म की गति विचित्र है। कुमार मन में इस प्रकार सोचता है इतने में उसकी दृष्टि एक वृक्ष की शाखा पर पड़ी। वहाँ रस्सी बाँध गले में फाँसी खाने की तैयारी करती हुई सौंदर्यवान सुन्दरी को दुःखी हृदय से इस प्रकार बोलती हुई सुना! हे सब बन देवताओं! आकाश में रहने वाले ज्योतिषी देवों! आप सब मेरी विनंति एक चित्त से सुनो। मैं इस जन्म में तो सागरचन्द्रपति को प्राप्त नहीं कर सकी परन्तु पुनर्जन्म में तो मुझे सागरचद्र से जरूर मिलाना। अपना नाम सुन विस्मित हो कुमार उत्साह से सुन्दरी के पास आकर फंदे को काट बोला। हे सुन्दरी! अज्ञान मनुष्य की तरह तू आत्मघात कर महान् पाप की भागी किस दुःख से होती है!

कुमार के वचन सुन वह सुन्दरी अपराधी की तरह लाचार और शर्म से बिना उत्तर दिये नीचा मुंह कर शोक ग्रस्त हो खड़ी रही। कुमार ने पुनः पूछा। सुन्दरी! बोलती क्यों नहीं? क्या अपना वृत्तान्त बताने में कोई आपत्ति है? यदि यह ठीक है तो मैं विशेष आग्रह नहीं करूँगा। क्या तुझे अपने स्थान पर जाना है? चल तुझे निर्विघ्न ले चलूँ। कुमार यह कहता है इतने में कोई एक विद्याधर वहाँ पहुँचा और बोला।

समान देहवाले शलाका पुरुषों को भी अपने किए हुए शुभा-शुभ कर्म भोगे विना छुटकारा नहीं होता तो फिर मैं तो बिना भोगे कैसे छुट सकता हूँ। परन्तु कोमल कदली समान देहवाली मेरी स्त्री मेरे वियोग से कैसे जीएगी वह विचारी तो मेरे वियोग में दुखी होकर प्राण त्याग कर देगी। इस प्रकार स्त्री के विरह से व्याकुल हुआ कुमार दुखी हो पूर्व परिचित श्लोक का, स्मरण कर व धैर्य धारण कर जंगली फलों का आहार कर अरण्य में घुमने लगा। इतने में वृक्षों की आड़ में एक प्रतिमाधर चारण मुनि को देखा। उन्हें देखते ही कुमार विनय सहित, प्रणाम कर मुनि के सन्मुख जा बैठा। मुनि ने कार्योत्सर्ग पूर्ण कर धर्मलाभ दे देशना आरम्भ की। मुनि की देशना से सागरचंन्द्र ने श्रावक धर्म ग्रहण किया। पीछे गुरु की वन्दना कर कुमार आगे चला। इतने में सामने से विविध प्रकार के आयुध सहित जल्दी २ आती हुई सैना देखी। थोड़ी देर में सैना नजदीक आ पहुँची और कुमार को घेर लिया। सेनापति ने लाल २ नेत्र कर कुमार को कहा कि हे पुरुषार्थहीन! हथियार लेकर लड़ने की तैयारी कर, मृत्यु तेरा इन्तजार कर रही है।

सेनापति का वचन सुन कुमार सिंह की तरह गर्जना कर बोला। अरे, अनेक शक्तियों की मदद से अपने को बलिष्ट माननेवाले धूर्त! तेरे भौंकने से यह सिंह डर जाय ऐसा नहीं है, चल तैयार हो जा। इतना कहते ही कुमार पर अनेक

आयुधों के प्रहार होने लगे। कुमार भी बिजली के समान चमकती हुई तलवार म्यान से बाहर निकाल सेना में घास की तरह सुभटों के मस्तक धड से अलग करने लगा। थोड़ी देर में तो आधी सेना का काम तमाम कर दिया। कुमार के अतुल पराक्रम से सेना भयभीत हो चारों दिशाओं में भागने लगी। सेना को भागते देख सेनापति घोड़े पर चढ़ सेना को वीर शब्दों से उकसाकर स्थिर करने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु सेना तो भागती ही रही। कुमार अश्व पर चढ़े हुए शत्रु के पास जाकर ठोकर से नीचे गिरा छाती पर अपना पैर रख रक्त से टपकती तलवार उसके मुख पर रखबोला, अरे। नीच विना कारण विरोध कर मृत्यु में जानेवाले नर पिशाच ! बोल अब तेरी रक्षा करनेवाली सेना कहाँ गई ? मद्य पानी की तरह अत्यन्त वाचालता से चलनेवाली जीभ अब कैसे रुक गई ? अब बता तेरे और मृत्यु में कितना अन्तर है ? र नराधम नीच ! अब तू तेरे इष्ट देव का स्मरण कर। अब तुझे तेरे विवेक हीन कार्य का इनाम देता हूँ सो स्वी कर। ऐसा कह उसे मारने के लिए कुमार ने तलवार उठ इतने में अचानक एक नवयोवना सुन्दरी वहाँ आ पहुँची बोली-अहो वीर पुरुष ! शांत रहो, हार कर पृथ्वी हुए शत्रु को वीर पुरुष कभी नहीं मारते।

उस सुन्दरी के अचानक ऐसे वचन सुन आश्चर्य से कुमार गम्भीर शब्द से बोला— हे सुन्दरी ! इस पिशाच को मृत्यु से बचानेवाली तुम कौन हो ?

तब सुन्दरी ने उत्तर दिया, वीरकुमार, मै कौन हूँ, सो सुनो । कुशवर्धनपुर नगर के कमलचन्द्रराजा की समरकान्ता राणी से उत्पन्न भुवनकाता नामक की पुत्री थी । उसने यौवन अवस्था में पहुँचने पर सागरचन्द्र कुमार के गुणो की प्रशंसा सुनी, इसलिए वह कुमार पर आसक्त हो निरन्तर उसी का स्मरण करने लगी । एक दिन शैलेशनगर के सुदर्शन राजा के समरविजय नाम के कुमार ने भुवनकान्ता का हरण कर इस वन में रखी । इसके बाद उसे किसी तरह खबर हुई कि सागरचन्द्र इसी मार्ग में अकेला चला आता है । ऐसा जान उसने, आपके साथ युद्ध किया और परिमाण क्या हुआ यह तो आप जानते हैं ।

कुमार ने कहा, हाँ यह तो मैं जानता हूँ परन्तु तुम कौन हो, यह क्यो नहीं बताती ।

तब वह नीचा मुख कर शर्मिन्दा होती हुई धीरे २ बोली नाथ मैं ही वह भुवनकान्ता हूँ जो निरन्तर आपके ही नाम को रट २ कर दिन व्यतीत करती हूँ अब आप कृपाकर इस दासी को ग्रहण कर दुःख से मुक्त करो और इस समरविजय को भी मुक्त करो, क्योंकि यह मारने योग्य नहीं है ।

भुवनकान्ता के कहने से समरविजय को कुमार ने अपने हाथों से खड़ा किया। भुवनकान्ता ने उसके प्राण बचाये ऐसा जानकर समरविजय वैरभाव छोड़ मित्र होगया। पीछे कुमार तथा भुवनकान्ता को अपने नगर में आग्रहपूर्वक लेगया। वहाँ बड़े उत्सव सहित सागरचंद्र ने भुवनकान्ता का पाणिग्रहण किया। पीछे वहाँ से रथ में बैठ प्रिया सहित अपने नगर को रवाना हुवा। मार्ग में जाते हुए अरण्य में प्रकाश से देदिप्यमान सुन्दर महल देखा। निर्जन स्थान में ऐसा सुन्दर महल देख कुमार को वहाँ जाकर महल देखने की इच्छा हुई। इसलिये प्रिया को रथ में छोड़ खुद अकेला उस महल को देखने गया। महल के नजदीक सदर दरवाजे पर जाकर खड़ा रहा। वहाँ कोई आदमी तो नहीं था परन्तु ऊपर के भाग में वाजिंत्र युक्त मधुर संगीतालाप की मिष्ट ध्वनि सुनाई दी। इस आकर्षण से कुमार निर्भय हो महल में चढ़ गया। महल के दूसरे खंड में जाकर खड़ा रहा तो वहाँ किन्नरी समान कंठ से वीणा आदि वाजित्रों सहित संगीत करती पाँच दिव्य कन्याओं को देखा। कुमार को देख कन्याएं खड़ी हो विनय सहित आदरपूर्वक बुलाकर बैठने को आसन दिया। पीछे उनमें से सबसे बड़ी कन्या दोनों हाथ जोड़ विनय सहित बोली—देवांश पुरुष! आप कौन हो, कहाँ रहते हो और कहाँ से आये हो कृपा कर बताओ।

विस्मित हो कुमार बोला—मैं मलयपुर नगर के अमृतचंद्र राजा का पुत्र हूँ। ऐसा कह अपनी यथास्थित हकीकत कह सुनाई। पीछे कहा कि तुम इस अरण्य में अकेली क्यों रहती हो?

कुमार का परिचय सुनकर वे कन्याएं खुश होकर कहने लगीं। राजकुमार! सुनो। वैताढ्य पर्वत पर दामपुर नगर के सिंह समान पराक्रम वाले सिंहासन खेचरपति की भद्रा, जया, गौरी, तारा और रंभा नामकी हम पाँच पुत्रियाँ हैं। ज्योतिषी के वचन से आपके साथ ब्याह होगा यह जान पिता ने विद्या के प्रभाव से इस जगह सुन्दर महल बनाकर रखी हैं। हम आपकी राह देखती हुई यहीं रहती हैं। आज हमारे पुण्योदय से आपका समागम हुआ। अब आप कृपाकर हमारा पाणिग्रहण कर अपनी अर्धांगिनियाँ बना कर सुखी करो।

मृगलोचिनी ललित ललनाओं की प्रार्थना से कुमार ने हर्षपूर्वक उन पाँचों कन्याओं से एक ही साथ गान्धर्व विवाह किया। पीछे पाँचों प्रमदाओं को पहलेवाले रथ में बिठा अपनी छ स्त्रियों सहित आगे चला। थोड़ी दूर जाने पर वीतराग देव का मनोहर चैत्य देखा। प्रभु के दर्शन की तीव्र उत्कंठावाला सागरचंद छः स्त्रियों सहित देवाधिदेव को वंदना करने विधि सहित मंदिर में गया। पूर्ण भक्ति से भगवान के दर्शनकर उल्लासपूर्ण हृदय से सबों ने स्तुति की। पीछे कुमार प्रासाद की शोभा देखने के लिये शिखर पर चढ़ा। ऊपर

वह इधर उधर देखता था इतने में अचानक वृक्ष की शाखा टूटने से कुमार भूमि पर गिर पड़ा। पूर्वपुण्य के प्रभाव से शरीर को चोट नहीं आई। थोड़ी देर में वहाँ से उठ स्त्रियों की तलाश करने जिन मंदिर में गया तो वहाँ पर कोई नहीं मिला। बाहर निकल रथ के पास देखा तो वहाँ भी कोई नहीं था। अचानक स्त्रियों के गायब होजाने से कुमार सोचने लगा कि वह अवश्य कोई बैरी देव या विद्याधर मेरी स्त्रियों को हर कर ले गया है। मैंने प्राप्त की हुई निधि को खो दिया। अब क्या करूं? कौन ले गया होगा? कहाँ तलाश करूँ? इस प्रकार व्याकुल हो पूर्वोक्त श्लोक का स्मरण करने से चित्त स्थिर हुआ। फिर विचारने लगा कि सब उपद्रवों का नाश करनेवाले जिनेश्वर की भावपूर्वक पूजा कर पीछे स्त्रियों को तलाश करने जाना चाहिए। ऐसा सोच पास के सरोवर के निर्मल जल में स्नान कर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से भगवान की पूर्णभाव से भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति करने लगा।

उस समय श्रीपुर नगर के राजा धर्मसेन जो अमृतचन्द्र राजा का मित्र था वह किसी ज्योतिषी के कहने से अपने परिवार सहित अपनी पुत्री को लेकर वहाँ आ पहुँचा। सिंहनाद खेचरपति भी अपनी पाँच पुत्रियों सहित वहाँ आकर कहने लगा कि हे कुमार! मेरी पुत्रियों और तुम्हारी स्त्रियों को किसने हरण किया वह वृत्तान्त सुनाता हूँ सो सुनो।

प्रथम आपको समुद्र से निकाल पास के द्वीप में अमिततेज विद्याधर व हेममाला के भेंट के समय आपको देखा था। उसके पद्म और उत्पल नाम के पुत्रों ने आपको शिखर से नीचा गिरा आपकी छ स्त्रियों का हरण करके जा रहा था उस समय मैं यहाँ आ रहा है। मार्ग में मेरी उनसे भेंट हुई। मेरी पुत्रियों को वह ले जारहा था। ऐसा मालूम होने पर मैंने उनके साथ युद्ध कर उत्पल को मार मेरी पुत्रियों को छुड़ाया। पद्म आपकी भुवनकान्ता को लेकर वैताढ्य पर्वत पर गया। भुवनकान्ता आपकी रानी है इसका पता मुझे पीछे लगा। यदि पहले ही यह मालूम हो जाता तो उसको भी नहीं लेजाने देता। अब मैं तुमको कुछ विद्यायें देता हूँ इनको सिद्ध कर आप खुद उस दुष्ट को पराजित कर भुवनकान्ता को छुड़ाकर लाओ नहीं तो वह बिचारी आपके वियोग से कदाचित आत्मघात करलेगी।

यह वृत्तान्त सुन कुमार को भुवनकान्ता के लिये बड़ा खेद हुआ और पाँच स्त्रियों के मिल जाने से हर्ष भी हुआ। पीछे हर्ष शोक सहित धर्मसेन राजा की कन्या के साथ विवाह कर सिंहनाद खेचरपति के पास से अनेक विद्याएं ग्रहण की। विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान रच उसमें सिंहनाद सहित स्त्रियों को लेकर वैताढ्य पर्वत पर अमिततेज खेचर के नगर में पहुँच उसे कहलाया कि तुम्हारे पुत्र पद्मकुमार ने मेरी स्त्री का हरण किया है सो उसे समझाकर मेरी स्त्री को मेरे सुपुर्द

करो नहीं तो युद्ध होने पर उसका बुरा परिणाम तुमको उठाना पड़ेगा।

अमिततेज को खबर मिलने पर उसने पुत्र को समझाकर उसके पास से भुवनकान्ता को छुड़ा सागरचंद्र के सुपुर्द को। पीछे सागरचन्द्र को उत्सवपूर्वक नगर में प्रवेश कराया। सागरचन्द्र ने कनकमाला को भी उसके पीहर से वहाँ बुलाया। आठों स्त्रियों सहित वैताढ्य पर्वत पर रह पंच विषय सुख भोगता हुआ हर्षपूर्वक शाश्वतों चैत्यों की यात्रा करता हुआ मनुष्य जन्म सफल करने लगा।

कुछ दिन सुखपूर्वक कुमार वहाँ रहा, पीछे अपने नगर जाने की इच्छा होने से अपना विचार सबको बताया। सबकी अनुमति लेकर कुमार विमान में बैठ सब स्त्रियों, अन्य परिवार एवं अपार समृद्धि लेकर अपने नगर के समीप आया और अपने आने की सूचना पिताजी को भेजी। राजा को कुमार के आगमन की खबर मिलने पर नगर में उत्सव कराया और स्वयं अपने परिवार सहित कुमार को लेने सामने आया। माता पिता को आते देख कुमार ने विमान से उतर विनय पूर्वक उनके चरण स्पर्श किए। बहुओं ने भी विनयपूर्वक सास श्वसुर को नमस्कार किया। कुमार की समृद्धि देख माता पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे बड़े ठाट–बाट से नगर में प्रवेश कराया। ऐसे आनन्द समय यह खबर मिली कि

नगर बाहर सूर्य उद्यान में सर्वलोक को पवित्र करने वाले और अनन्तज्ञान को धारण करनेवाले भुवनावबोध मुनि पधारे हैं।

केवली भगवान के आने की सुचना मिलने से राजा कुमार सहित वंदना करने गया। विनय सहित मान प्रदक्षिणा दे राजा और कुमार उचित पर स्थान बैठ गये। पीछे गुरू महाराज धर्म देशना देने लगे।

लक्ष्मी वैश्ममिन भारती च वदने शौर्यं च दोष्णोर्युगे
त्यागः पाणितले सुधीश्च हृदये सौभाग्यशोभा तनौ।
कीर्तिर्दिक्षु सपक्षता गुणिजने यस्माद् भवेदंगिना,
सोऽयं वाञ्छित मंगलावलि कृते धर्मः समासेव्यताम्॥१॥

अर्थ—हे भव्यजनो! जिस धर्म से घर में लक्ष्मी, मुख में सरस्वती, दोनों भुजाओं में शौर्य, हाथो में दान, हृदय में सुन्दर बुद्धि, शरीर में शोभाग्य शोभा, दिशाओं में कीर्ति और गुणवान पुरुषों में पक्षपात होता है ऐसे इच्छित मंगलमाला को देने वाले धर्म का सेवन करो।

और फिर कहा है कि—

पूआ जिणंद सुरइ वएसु, जुत्तो अ सामाइयपोसहमी।
दाण सुपत्तेनमणं सुतीत्थे, सुसाहुसेवा सिवलोय मग्गो॥१॥

अर्थ—जिनेश्वर की पूजा, व्रतों में प्रेम, सामायिक पौषध से युक्त, सुपात्र को दान, सुतीर्थ की वंदना और सुसाधु की सेवा यह सब शिवगमन के मार्ग हैं।

इस प्रकार गुरु मुख से देशना सुन, अवसर देख राजा बोला—हे प्रभु! मेरे कुमार का किसने और किस कारण से हरण किया आप कृपाकर बताइए।

गुरु ने कहा हे राजन्, पूर्व विदेह क्षेत्र में एक नगर में दो भाई स्नेहपूर्वक रहते थे। उनमें बड़े भाई की स्त्री अपने पति से बहुत प्रेम करती थी। चाहे जैसा काम हो फिर भी वह उसे दूर नहीं जाने देती। ऐसा दृढ़ स्नेह देख छोटे भाई ने एक रोज परीक्षा लेने के लिये अपने बड़े भाई से कहा कि भाई! आज किसी कार्यवश तुमको बाहर गाँव जाए बिना काम नहीं चलेगा क्योंकि वह काम आपके बिना होगा नहीं। छोटे भाई के कहने से बड़ा भाई स्त्री को बड़ी मुश्किल से समझाकर जल्दी वापिस आने के लिए कह बाहर गाँव चला गया। बड़े भाई के जाने के थोड़े दिन बाद छोटा भाई भाभी के पास आकर शोकग्रस्त मुद्रा से बोला, भाभी! क्या कहूँ कहते मेरी जीभ काम नहीं देती परन्तु कहे बिना काम भी नहीं चलता। मेरे भाई की यहाँ से जाने के बाद अचानक तीव्र रोग से मृत्यु हो गई।

तीक्ष्ण तीर समान देवर के वचन सुन अहोनाथ! ऐसा कह उसने दम तोड़ दिया। भाभी को प्राणहीन देख लघुभ्राता अत्यंत पश्चाताप करने लगा कि सिर्फ परीक्षा करने के लिए मैंने ऐसी अघटित बात कही और इस बिचारी ने अपने प्राण दे दिए। मैं बड़ा अभागी हूँ। अब बड़े भाई को क्या उत्तर दूँगा।

कुछ दिनों बाद बड़ा भाई वापिस आया। तब छोटे भाई ने सब हाल सुनाकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। बड़ा भाई स्त्री की मृत्यु के समाचार सुन अपनी स्त्री के स्नेह का स्मरण कर विलाप करने लगा। तब से भाई के साथ द्वेष रखने लगा। उसके साथ बोलना, खाना पीना आदि बंद कर निरन्तर शोकाकुल रहने लगा। अन्त में मोह से वैरागी हो तापसी दीक्षा ली और बालतस्या से कष्ट सहन कर वह असुरकुमार हुआ। छोटे भाई ने भी समकित युक्त शुद्ध संयम अंगीकार किया। गुरु के पास विनय पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन कर निरतिचार से चारित्र का पालन करने लगा। एक बार तापसी दीक्षा ले असुरकुमार होनेवाले बड़े भाई के जीवने पूर्व वैर का स्मरण कर उस मुनि की हत्या की। मुनि मरकर दसवें प्राणान्त देवलोक में देवता हुआ। वहाँ-से चवकर, वह देव तेरा पुत्र सागरचंद्र हुआ। बड़े भाई का जीव असुरकुमार से चवकर अनेक भवो में भ्रमण कर मनुष्य जन्म प्राप्त कर पुन तापसी दीक्षा ग्रहण कर व मरकर अग्निकुमार देव हुआ। उस पूर्व के वैर से कुमार को निद्रा में से उठाकर समुद्र में फैंका वगैरह कष्ट दिए। परन्तु सागरचंद्र ने पूर्व में शुद्ध चरित्र का पालन किया उस पुण्य के प्रभाव से किसी भी जगह दुखी न हो सुख ही प्राप्त किया।

इस तरह गुरु मुख से देशना सुन कुमार को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। इसलिए वह गुरु से पूछने लगा हे करुणा समुद्र!

यह जीव सँसार में भ्रमण करते हुए कितनी कुल कोटों व योनि में भ्रमण कर दुख प्राप्त करता है ? यह आप कृपाकर बताओ।

कुमार की प्रार्थना से गुरु महाराज बोले—हे कुमार ! योनि व कुलकोटी का विचार पृथ्वीकायादिक के भेद से अनेक प्रकार का बतलाया है। फिर भी मैं तुझे संक्षेप में कहता हूँ सो एकाग्र चित्त से सुनना। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय इन प्रत्येक की सात २ लाख योनि हैं। सधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख योनि हैं, विगलेंद्रिय की दो २ लाख, नारकी, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की चार २ लाख योनि है, तथा मनुष्य की चौदह लाख योनि है। इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनि है। अब इन सबकी कुल कोटी कहता हूँ वह सुनना। बारह लाख कुल कोटी पृथ्वीकाय की, सात लाख कुल कोटी अपकाय की, तीन लाख कुल कोटी तेऊकाय की, सात लाख कुल कोटी वायुकाय की पच्चीस लाख कुल कोटी नारकी की, छब्बीस लाख कुल कोटी देव की, बारह लाख कुल कोटी मनुष्य की, अट्ठाइस लाख वनस्पति काय की, सात लाख बेइन्द्रिय की, आठ लाख तेइन्द्रिय की, नौ लाख चौरेन्द्रिय की, साढ़े बारह लाख जलचर की, बारह लाख खेचर की, दस लाख चतुष्पद की दस लाख उरपरी की नौ लाख भुजपरी की इसप्रकार कुल एक सौ साढे सत्तानवें लाख कुलकोटी हैं। इनमें अनादिकाल से यह जीव मोह

मत्री के पुत्र सुमति, श्रीपुंज सार्थवाह के पुत्र मदन, और श्रीधर सेठ के पुत्र गज के साथ मित्रता होगई। वे चारो मित्र हमेशा साथ ही रहकर उद्यानादि में क्रीडा किया करते थे। किसी समय वे चारों मित्र उद्यान में क्रीडा करने गये। वहाँ अनेक जीवो का उपकार करनेवाले सिंहसूरि आचार्य को देखा। उन्हें देख चारों मित्र विनयपूर्वक वंदना कर गुरु के सन्मुख बैठ गये। इसलिए गुरु महाराज ने देशना देना आरम्भ किया। देशना देने के बाद अन्त में गुरुजी ने निम्न श्लोक कहा।

नरस्य पंचक दास्य, सौन्दर्ये:सति किं पुनः।
बुद्धिः साहसी पुण्य प्रभाव सहिता पुनः॥

अर्थ—मनुष्य को उसका पंचक अर्थात् भाग्य दास बनाता है, उसमें भी जो सौंदर्यमान मनुष्य हो अथवा पुण्य प्रभाव से साहसी व बुद्धिमान हो तो फिर क्या-कहना?

यह श्लोक सुन चारो मित्र अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए बिना कोई वस्तु लिए तथा माता पिता की आज्ञा लिए बिना ही परदेश चले गये। मार्ग में जंगली फल खाते और नाना प्रकार की कथा वार्ता करते हुए दस दिन के बाद एक अटवी को पार कर एक नगर में पहुँचे। वहाँ सेठ पुत्र से तीनो मित्रों ने कहा कि आज यहा पर तू तेरी बुद्धि से भोजन करा। सेठ के पुत्र ने यह बात स्वीकार की और गाँव में गया। गाँव में जा देश दशा कर गाँव में घुमने लगा। इतने में उस दिन कोई पर्व होने से एक वृद्ध वणिक की दुकान पर

ग्राहकी विशेष थी जिस से व्यापारी को व्याकुल जान उसे बेचने संभालने में मदद करने लगा। थोड़ी देर में सब ग्राहको को निपटा बिदा कर वणिक ने सेठ के पुत्र को समाचार पूछ अपने घर भोजन करने के लिए आग्रह किया। सेठ पुत्र ने कहा कि हम चार मित्र हैं और सब भ्रमण करने निकले हैं इसलिए अकेला मैं आपके यहाँ भोजन करने नहीं आ सकता। तब वणिक ने कहा कि आपके दूसरे मित्रों को भी बुला लो और आज तो अवश्य मेरे घर ही भोजन करो। वणिक के आग्रह से श्रेष्टि पुत्र ने उसका कहना माना और चारों मित्रो ने उस दिन वहाँ ही भोजन किया। दुसरे दिन उस गाँव से चल दूसरे गाँव में पहुचे। वहाँ आकर सार्थवाह के पुत्र को मित्रों ने कहा कि आज सबको तू भोजन करा। मित्रों की बात मान अनंग समाव अद्भुत रूपवान सार्थवाह का पुत्र गाँव में वेश्या के मौहल्ले में गया। उसे अत्यन्त स्वरूपवान देख अनंगसेना वेश्या उस पर मोहित होगई। इसलिए उसने उसे आदरपूर्वक बुला अपने घर रहने की प्रार्थना की। सार्थवाह के पुत्र ने कहा कि मैं अपने दुसरे तीन मित्रों को छोड़कर तेरे यहाँ अकेला नहीं रह सकता। वेश्या ने कहा कि अपने दुसरे मित्रों को भी बुला लो, उनका भी योग्य अतिथि सत्कार करूँगी। वेश्या के आग्रह से अपने मित्रों को बुला लाया। वेश्या ने सबको आदरपूर्वक बुला विविध प्रकार का भोजन करा संतुष्ट किया। तीसरे दिन वहाँ से रवाना हो चारों मित्र सुवर्णपुर नगर में आए। वहां सब मित्रो ने मंत्री पुत्र से

कहा कि आज सबको तुम भोजन कराओ। मित्रों की बात मान मंत्री पुत्र-नगर में राजमंदिर की तरफ गया। वहां आकर खड़ा रहा इतने में राजसभा में एक आदमी एक श्लोक बोला और कहा-कि जो कोई इस समस्या की पूर्ति करेगा उसे एक हजार मोहर मिलेगी। वह श्लोक इस प्रकार से था :—

को देवः शिवदायी, कश्चनः गुरुर्भवसेतुसमः।
को धर्मो विश्वहितः सर्वेषां किं प्रियं परमं ॥१॥

अर्थ—कल्याणकारी अथवा मुक्तिदाता देव कौनसा ? संसाररूप समुद्र से पार करानेवाला गुरु कौन ? विश्व की भलाई करनेवाला धर्म कौनसा ? और सबको कौनसी वस्तु प्रिय है ?

उक्त श्लोक सुन मंत्री पुत्र ने कहा—यह समस्या मैं पूर्ण करूँगा। राजसेवक ने कहा तो तुमको राजा की आज्ञानुसार एक हजार सोना मोहर मिलेगा। मंत्री पुत्र ने कहा 'चलो राजसभा में'। ऐसा कह राजसभा में आकर समस्यापूर्ति करते हुए कहा कि, मोक्ष को देनेवाले वीतराग श्री अरिहंत देव है, संसार समुद्र से पार करानेवाले परमोपकारी-श्री निर्ग्रन्थ गुरु हैं, विश्व का भला करनेवाला जिनोक्त दयामूल धर्म है और सबको अपना जीव अत्यन्त प्यारा है।'

इस प्रकार यथार्थ समस्या को पूर्ण करने से राजा ने अत्यन्त प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा की, और एक हजार मोहर दी। मोहर ले मंत्री पुत्र आवश्यक सामग्री ले जाकर सबको भोजन कराया। इसके बाद वहाँ से रवाना हो चौथे दिन

कंचनपुर नगर में पहुँचे। वहाँ राजपुत्र रत्नचूड़ को मित्रों ने कहा कि आज तुम हम सबको भोजन कराओ। रत्नचूड़ ने यह स्वीकार किया। परन्तु भोजन प्राप्त करने के लिए कोई भी उपाय किये बिना नगर बाहर उद्यान में पुण्य पर आश्रित हो सबके साथ विश्राम करने लगा। इतने में उस नगर के अपुत्रिये राजा की मृत्यु हो जाने से राज्य गद्दी पर बिठाने के लिए प्रकट किए हुए पंच दिव्य घूमते २ जहाँ राजकुमार बैठा था वहाँ आकर कुमार के पास ठहर गये। इस पर प्रधान और नगरनिवासियों ने मिल कर रत्नचूड़ कुमार को नगर का राजा बनाया। वास्तव में पुण्यशाली को पुण्य प्रभाव से पग २ पर संपदा प्राप्त होती है। राजकुमार का उल्लासपूर्वक राज्याभिषेक कर सिंहासन पर पर बिठाया। उस समय अनेक गरीबों को दान दे उनकी गरीबी दूर की। इससे सब रत्नचूड़ राजा की प्रशंसा करने लगे। राजा प्रधान पुत्र को मुख्य मंत्री, सार्थवाहक के पुत्र को कोषाधिपति और सेठ पुत्र को नगरसेठ पदवी दी और खुद न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

अन्त में रत्नशेखर राजा को खबर हुई कि राजकुमार को कंचनपुर का राज्य प्राप्त हुआ है। इससे वह अत्यन्त हर्षित हुआ। पीछे पत्र लिख कुमार को मित्रों सहित अपने पास बुलाया। पिता का पत्र पढ़ दूसरे प्रधानों को राज्य सौंप तुरंत

मित्रों सहित अपने नगर गया। राजा ने बड़े ठाट से नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता के चरण स्पर्श किये। पीछे राजा ने रत्नचूड़ कुमार को राज दे गुरु के पास सयम लिया।

न्यायपूर्वक राज्य करते हुए रत्नचूड़ के सोमेश्वर और सूरसेन दो पराक्रमी पुत्र हुए। जब वे यौवनावस्था में पहुचे तो राजा ने सोमेश्वर को कचनपुर का राज्य दिया और सूरसेन को ताम्रलिप्त नगर के राज्य सिंहासन पर युव राज पद पर स्थापित किया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

एक दिन राजसभा में मिथ्याद्रष्टि पंडित आया। उसने अपने वेद पुरान स्मृति आदि शास्त्रों की प्रशसा कर कहा कि ये सब सस्कृत भाषा में होने से मोक्ष को देनेवाले हैं और जिनागम को अवगणना कर कहा कि जिनागम प्राकृत भाषा में होने से प्राणियों को मोक्ष मार्ग बतानेवाले नहीं हैं। इस प्रकार जिनोक्त तत्व की अवगणना सुन राजा कुछ भी बोले बिना मौन बैठा रहा। उसी समय उद्यानपाल ने सूचना दी कि अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचँद्र मुनि नगर उद्यान में मुनि परिवार सहित पधारे हैं। केवली भगवान के आगमन को सुन रत्नचूड़ राजा हर्षपूर्वक अनेक मनुष्यों के साथ उस पण्डित को साथ ले गुरू वँदना करने गया। गुरू के पास आकर विनयपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दे भावपूर्वक नमस्कार

कर गुरू सन्मुख उचित स्थान पर बैठा। इसलिए गुरू ने देशना आरम्भ की।

'हे भव्यजनो! विशाल लक्ष्मी, सुन्दर रूप, विनयवंत पुत्रों का परिवार, उदारता, निर्मल बुद्धि उत्तम प्रकार के भोग सत्यवादिता, निर्मल शील का पालन, दयालुता, लज्जालुता, उत्तम कुल में जन्म और देवगुरु के प्रति शुद्ध भाव से अनन्य भक्ति वगैरह संस्कार का ही फल है। ऐसा समझ धर्म में रूचि रखो।

देशना श्रवण कर राजा बोला—हे भगवान! जिनेश्वर ने प्राकृत भाषा में आगमों की रचना क्यों की? गुरु ने कहा राजन! जिनेश्वर की वाणी सब समझ सकें ऐसी और अर्ध मागधीययुक्त होने से प्राकृत भाषा में रची है और दूसरा भी कारण यह है कि:—

बालस्त्रीमंदमूर्खाणाम् नृणाम् चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहाय तत्वज्ञै:, सिद्धान्तः प्राकृत कृतः ॥१॥

अर्थ—चारित्र की आकांक्षा करनेवाला बालक, स्त्री, मंद बुद्धिवाला और मूर्ख जीवों के अनुग्रह के लिए तत्व के जानने वाले जिनेश्वर ने सिद्धान्त प्राकृत भाषा में बनाये हैं।

इतना कहने के बाद राजा का अभिप्राय जान केवली महाराज पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि पंडित से कहने लगे कि हे पंडित! यह समस्त सचराचर विश्व नित्य है या अनित्य? यदि नित्य है तो किस प्रकार नित्य है? यदि अनित्य है तो अनित्य किस

तरह है। गुरु के इतने से प्रश्न से पंडित स्तब्ध होगया। इसलिए वहाँ बैठे हुए सब लोग पंडित की हंसी करने लगे। इससे वह बहुत शर्मिन्दा हो नीचा मुंह कर बैठा रहा। पीछे पुन: केवली महाराज ने कहा कि जिनोक्त आगम का एक २ वाक्य अनंत अर्थ युक्त है, वह मिथ्या दृष्टि को बिलकुल अगोचर है, और सम्यक् दृष्टि को सुलभ है। अन्धकार को नाश करनेवाला जिस तरह दीपक है उसी प्रकार अज्ञान का नाश कर सम्यक् बोध देने वाला श्रुत आगम है। इसीलिए कहा है कि–

मोहं धियो हरति कापथमुच्छिनत्ति,
संवेगमुन्नयति सत्प्रशमं तनोति।
स्वर्गापवर्गपदवी मुदमातनोति,
जैनं वचः श्रवणातः किमु नातनोति ॥१॥

अर्थ– जो (श्रुतआगम) बुद्धि के मोह कोह को हरते हैं, कुत्सित मार्ग पाखंड का उच्छेद करते हैं, सवेग की वृद्धि करते हैं, श्रेष्ठ प्रशम का विस्तार करते हैं और स्वर्ग तथा मोक्ष सम्बन्धी हर्ष को वृद्धि करते है। श्रीजिन के वचनो का श्रवण करने से किस वस्तु का विस्तार नहीं होता अर्थात् वह सर्व पदार्थों को देता है।

जो प्राणी भाव से आगम की भक्ति करता है, वह प्राणी जड़त्व, अंधत्व बुद्धि हीनता और-दुर्गति को कभी प्राप्त नहीं करता और जो आगम की आशातना करता है वह प्राणी दुर्गति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार श्रुत भक्ति की महिमा सुन राजा ने श्रुतभक्ति करने का नियम लिया । कुछ समय तक गृहस्थाश्रम में श्रुत ज्ञान और श्रुत ज्ञानी की द्रव्य तथा भाव से विधि सहित भक्ति की । पीछे विशेष रूप से भक्ति करने की जिज्ञासा से राजा ने ज्येष्ठ पुत्र सुरसेन को राज्य सुपुर्द कर संसाररुप बँधन को काटने के लिए अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचंद्र मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया । धीरे २ सत्तर भेद से समय का पालन करते हुए ग्यारह अंग का सूत्रार्थपूर्वक अध्ययन कर गीतार्थ हुए । श्रुत भक्ति के लिए नियम में विशेष दृढ़ चित्त हो श्रुतधरों की अन्नपानऔषधादि से निरन्तर उत्साहपूर्वक भक्ति करने लगे ।

इस प्रकार भक्ति करते कुछ दिन व्यतीत होने पर एक बार गुरु के साथ भारतिपुरपतन में आये । वहाँ ईशानदेव-लोकाधिपति राजर्षि मुनि की परीक्षा करने के लिये विप्र का रूप धारण कर मुनि के पास आकर कहने लगा कि हे मुनि ! निरस प्राकृत भाषा में लिखे जिनागम को पढ़ने में अत्यंत कष्ट होता है इसलिए उन्हें छोड़ संस्कृत भाषा जो कि देवभाषा कहलाती है उसमें लिखे आगमों को पढ़ो जिससे आत्मा का वास्तविक कल्याण हो ।

समता सिंधु राजर्षि मुनि विप्र के वचन सुन मधुर वाणी से बोले—विप्र ! व्यर्थ में जिनागम की निंदा कर क्यों पाप का भागी बनता है ? जिनोक्त आगम की निंदा करनेवाला

प्राणी अतिशय क्लिष्ट और तीव्र विपाकवाले कर्म बंधकर मूक और अज्ञानी होता है, हीन योनि में जन्म लेता है और दुर्गति में जाता है और वहाँ पूर्व कर्मवश अतिशय दुःख को भोगता है इसलिए कहता हूँ कि—

तित्थयर पवयण सुय, आयरिय गणहरं महढिढय ।
आसाएवो बहुसो, अनन्तसंसारिओ होइ ॥१॥

अर्थ—तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर और महर्धिक की आशातना करनेवाला अनन्त ससारी होता है। महा मोहरूप अधकार युक्त ससाररूप मार्ग में विचरण करने वाले प्राणियो को जिनागम दीपक तुल्य है। इसीलिए कहा है—

अन्धयारे दुरुत्तारे, घोरे ससार सागरे ।
एसोव महादीवो, लोआलोआनलोयणे ॥१॥
एसो नाहो अणाहारं, सव्व भूआण भावओ ।
भावबंधु इमोचेव, सव्व सुरकाण कारण ॥२॥

अर्थ—मोहरूप अधकार से पूर्ण और दुस्तर भयकर ससार समुद्र में लोकालोक को प्रगट करने में श्रुत महान् दीपक तुल्य है और निराधार जीवो का भाव से नाथ और भाव से बंधु तथा निश्चय सर्व सुख का कारण है।

इस प्रकार राजर्षि मुनि के श्रुत भक्तियुक्त अमृत तुल्य वचनो को श्रवण कर, ईशानेंद्र प्रसन्न हो प्रगट हुआ और मुनि को प्रदक्षिणा दे उनकी स्तुति करने लगा। पीछे इन्द्र गुरु महाराज के पास जाकर पूछने लगा कि हे प्रभु! भक्ति पूर्वक

श्रुत की भक्ति करने से इन मुनि को क्या फल मिलेगा ? गुरु महाराज ने कहा देवेन्द्र ! यह मुनि श्रुत भक्ति के प्रभाव से इन्द्रो को भी पूज्य जिनपद को प्राप्त करेंगे। इस तरह आगम भक्ति के फल को जानकर ईशानेंद्र गुरु तथा मुनि को पुनः भावपूर्वक वंदन कर उनकी स्तुति कर अपने स्थान को लौट गया।

राजर्षि मुनि निर्मल चारित्र का पालन कर श्रुत भक्तिपद का आराधन कर देवलोक हो दशवे प्राणांत देवलोक में बीस सागरोपम के आयुष्य वाले देव हुए। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर अनन्त आनन्दमय मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे।

बीसवीं कथा

राजा मेरूप्रभ

जो बीसवें प्रवचन प्रभावना स्थनाक आराधना से तीर्थङ्कर हुवे

भरत क्षेत्र में सूर्यपुर नामका नगर था। वहाँ अरिदमन राजा राज्य करता था। उसके मदनसुन्दरी और रत्नमंजरी दो पटराणियाँ थीं। उन राणियों के मेरू प्रभ और महासेन दो

पराक्रमी पुत्र हुए। समय व्यतीत होने पर उन्होंने युवावस्था में पैर रखा।

एक दिन रत्न मजरी ने अपने पुत्र महासेन कुमार को राज्य का लोभी बनाया, और खुद ने मदनसुन्दरी के पुत्र मेरू प्रभ को मारने के लिए कुमार की धाय के द्वारा जहर देने का षडयन्त्र रचा। रत्नमजरी की योजनानुसार वह धाय जहर ले मेरुप्रभ के पास आई. परन्तु कुमार के पुण्य प्रभाव से उस धाय के विचार बदल गये और वह बोली कुमार! तुम बिना किसी को बताए गुप्त रीति से यहाँ से चले जाओ नहीं तो तुमको जान से हाथ धोना पड़ेगा।

धाय के वाक्य सुन मेरु प्रभ बोला–तू यह क्या कहती है? मुझे समझ में नहीं आया। साफ साफ कह कि मैं किसलिए चला जाऊँ? मुझे यहाँ किसका भय है?

धाय ने कहा कुमार? तुमको यहाँ से जाने के लिए कहती हू यह सत्य ही है आपकी सौतेली माता ने अपने पुत्र को राज्य दिलाने और आपको मारने के कई षड्यन्त्र रचे हैं। इसमें प्रथम तो मेरे द्वारा ही आपको भोजनादि में जहर देने की व्यवस्था की है। देखो यह जहर है। ऐसा कह अपने पास का जहर बताया और कहा–मेरे से यह घातकी काम नहीं हो सकेगा। ऐसा कह उसने सब हकीकत उसे बतादी। अब आप यहाँ से चले जाओ नहीं तो वह पापिष्टा मुझे और आपको मार डालेगी। यदि आप यहाँ से

चले जाओगे और जीवित रहोगे तो किसी भी उपाय से यहाँ का राज्य प्राप्त कर सकोगे ।

धाय के मुख से सारा वृत्तान्त सुन मेरुप्रभ कुमार वेष बदल हाथ में तलवार ले गुप्त रीति से नगर बाहर निकल गया । कुछ दिनों बाद वह शांतिपुर नगर में आया । वहाँ आकर नगर में भ्रमण करते हुए करने उसने देदिप्य मान और विशाल श्री जिनेश्वर का चैत्य देखा । उसे देख कुमार ने स्नान कर वस्त्र पहिन श्रीशांतिनाथ प्रभु की सुगंधित पुष्प धूपादिक से भाव पूर्वक सेवा की। पीछे विविध स्तोत्रों से श्री जिनेश्वर की स्तुति स्तवनादि कर शहर की शोभा देखने लगा । इतने में जिनालय के पास वाले मैदान में अभयघोष मुनि को देशना देते देखा । उन्हें देखते ही कुमार तुरन्त वहाँ जाकर वंदना कर बैठा । पीछे देशना सुनने लगा ।

गुरु महाराज ने कहा 'हे भव्यजनो ! इस संसार में प्राणी को उत्तम प्रकार के सुख, संपति और ऐश्वर्य आदि देने में सुरतरु समान केवल श्रीजिन भाषित धर्म ही है तथा साथ ही विशाल बुद्धि, सुन्दर रुप, लोक प्रियता तथा स्वर्ग और अपवर्ग की लक्ष्मी भी इसी धर्म से प्राप्त होती है ।

देशना देने के बाद गुरु महाराज ने मेरुप्रभ कुमार को देख ज्ञानोपयोग से श्रावकवर्ग को सम्बोधन कर बोले कि यह तुम्हारे पास बैठा हुआ राजकुमार भविष्य में तीर्थंकर होने वाला है । इस भव में भी शासन की प्रभावना करनेवाला है इसे तुम अभी किसी निर्भय एवं गुप्त स्थान में रक्खो । क्योंकि

अभी थोड़ी देर में इसे मारने के लिए इस की पापिष्टा माता के आदमी आवे गे।

यह वृत्तान्त श्रवण कर वहाँ बैठेहुए धनेश्वर शेठ ने अपने घर के भूमिगृह में उसे छिपा दिया। दोपहर बाद गुरु के कहे माफिक एक दल नगर बाहर आ पहुचा। उनमें से कुछ लोग नगर में मेरु प्रभ को ढुढने लगे। परन्तु किसी जगह उसका पता नहीं लगा। इसलिए वे सब निराश हो चले गए।

सेना के जाने के बाद कुमार बाहर निकल गुरु के पास आकर बोला! हे करुणासिंधु! आपने हीं आज जीवित दान दिया है। हे दया-निधि! मै किस तरह आपके ऋण से मुक्त होऊं यह मुझे कहो।

गुरु ने कहा—महाभाग्य सम्यग्दर्शन युक्त जिनोक्त धर्म का तू भाव पूर्वक पालन कर। पुण्य कार्य कर जिनोक्त धर्म की प्रभावना बढ़े वैसा काम कर। इसी से तू अन्त मे अपार सुख को भोगने वाला होगा।

गुरु वचन श्रवण कर कुमार ने सम्यग्दर्शन युक्त श्रावक धर्म अंगीकार किया। पीछे उसी नगर में गुप्त रीति से रह धर्म की आराधना करता हुआ दिन व्यतीत करने लगा।

सूर्यपुर नगर में कुमार के एका एक गुम हो जाने से राजा अरिदमन बहुत शोकाकुल रहने लगा। चारो दिशाओ में कुमार को ढ़ढने के लिए मनुष्य निरन्तरघुमने लगे। कुछ दिन बाद राजा को पता चला कि कुमार शाँतिपुर नगर में है।

इसलिए पत्र लिखकर आदमी भेजा कि पत्र पढ़ते ही तुरन्त यहाँ आ जावे। पिता का पत्र पढ़कर कुमार तुरन्त राजा के पास आया। कुमार को देख राजा बोला बेटा! तुम एकाएक इस तरह चुपचाप क्यों चले गये? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया था? अथवा कोई बात तेरे हृदय में चुभ गई थी?

कुमार ने कहा पिताजी! मेरे मन में कोई बात नहीं थी और न किसी ने मेरा अपमान किया। सिर्फ देशान्तर देखने की इच्छा से चला गया था। क्योंकि पूछने पर आप मुझे जाने नहीं देते। इस प्रकार राजा के मन का समाधान किया परन्तु पूर्व की सत्य बात कह सौतेली माता के दुष्ट आचरण को नहीं बताया। देखो सज्जनता।

राजा ने कहा बेटा! तुम्हें मेरे बुढ़ापे की तरफ तो देखना था? तू आगया यही बहुत आनन्द की बात है। अब तू राज्य ग्रहण कर ताकि मैं संसार सिंधु को पार करने के लिए चारित्र अंगीकार कर सकुँ।

कुमार ने कहा पिताजी! ऐसा कौन हीन भागी होगा जो धर्म साधना में बाधा डाले। आप शौक से चारित्र अंगीकार करो और यह राज्यभार मेरे भाई महासेन को दे दो। मैं उसकी सेवा में रहूँगा। मुझे राज्य तृष्णाजरा भी नहीं है।

राजा ने कहा कुमार! ऐसा नहीं हो सकता। जो योग्य होता है उसे ही राज्य दिया जाता है। तुझे राज्य देने से तेरी

सौतेली माता नाराज हो तो इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मेरी इस आज्ञा का तो पालन करना ही पड़ेगा।

फिर राजा ने मेरुप्रभ कुमार को राज्य भार दे और महासेन को युवराज पदवी दे चारित्र ग्रहण कर उसका पालन कर अन्त में शुभ ध्यान से काल कर स्वर्ग में गये।

मेरुप्रभ राजा ने न्याय युक्त राज्य करते हुए कुरु राजा की पुत्री त्रैलोक्यसुन्दरी के साथ व्याह किया। सुख भोगते हुए रानी से एक पुत्र और पुत्री हुए। मेरुप्रभ को सुखरूप लीला देख रत्नमजरी निरन्तर हृदय में द्वेष कर उसका नाश करने का प्रयत्न करने लगी। विविध प्रकार के तर्क वितर्क करते रत्नमजरी ने एक युक्ति ढूढ निकाली। हमेशा मेरुप्रभा राजा के लिए पुष्प की माला, ले जाने वाली माली को बुलाकर कहा कि यदि तू मेरी बताई हुई युक्ति से मेरुप्रभ को मार डालेगा तो मै तुझे मुँह माँगा इनाम दूगी।

माली ने कहा महारानी! मेरे से यह काम नहीं होगा क्योकि यह बात राजा को मालूम हो जाय तो मेरे सारे कुटुम्ब का नाश हो जायगा। माताजी! मुझे आपकी मोहरें नहीं चाहिए।

माली को डरता देख रत्नमजरी ने सुवर्ण मोहरों की थैली को खाली कर उसके सामने ढेर कर कहा– ले इतने धन से तेरी सारी जिंदगी सुख से व्यतीत होगी। तेरे मन में बात खुल जाने का जो भय है वह मै जानती हूँ

परन्तु मेरे बताए उपाय से वह क्षण भर में प्राण रहित हो जायेगा और किसने मारा इसकी किसी को खबर नहीं पड़ेगी। देख यह तालपुट विष की शीशी है। इसका जरा भी स्पर्श होने से मनुष्य प्राणरहित हो जाता है। सुन। राजा के लिए तू हमेशा पुष्प माला ले जाता है, उस माला के एक पुष्प पर शीशी में से दो बूँद डालना पीछे वह माला राजा को देना। बस तुझे इतना ही काम करना है; बोल इस प्रकार करने से कोई जान सकेगा कि यह काम माली का है।

सुवर्ण मोहरों के ढेर को देख घोर कृत्य करने को माली का मन ललचाया। बिचारा गरीब माली रानी के पाप पूर्ण जाल में फँस नमकहराम बन बोला—महारानीजी! क्या इतनी ही मोहरें मिलेगी? रानी ने कहा क्या इतनी मोहरें कम रहेंगी। यह कह दूसरी थैली देकर कहा—काम पुर्ण होने पर और इनाम दूँगी।

रानी की युक्ति सफल हुइ। मालीग्रस्थ हो राणी की बात मान गया। हमेशा के नियामानुसार दूसरे दिन माली ने सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला बनाकर दरवार में आकर महाराज को दे पीछे अपने घर आया। उस समय राजा अपने छोटे भाई और दूसरे सरदारों के साथ बैठा वार्तालाप कर रहा था। माला को स्नेह से लघु भाई के गले में डाल दी। थोड़ी देर में पुष्प में रखे विष का स्पर्श होते ही महासेन कुमार वृक्ष की शाखा जैसे टूटती है उस प्रकार पृथ्वी पर वेसुध अवस्था में गिर पड़ा। अचानक यह घटना देखकर सर्व राजकुटम्ब और

राजमँहल वहाँ इकट्ठा हो गया । रानी रत्नमजरी ने अपने पुत्र के गले में पुष्पमाला देख तुरन्त सावधान हो गई कि मेरा पाप का कर्म मुझे ही खा गया । ऐसा समझ छाती कूटती रुदन करती हुई कहने लगी । हे देव ! तुने मेरे पर यह क्या जुल्म किया ? मैने तेरा क्या बिगाड़ा है ? अरे बेटा ! अब मैं कैसे जीवित रहूँगी ?

राणी वगैरह को विलाप करते देख मेरुप्रभ राजा महासेन की नाड़ी देख बोला—माताजी अभी घबराने की कोई बात नही है क्यों कि नाडो चलती है । अभी वैद्यों को बुलाकर भाई का उपचार करवाता हूँ । आप जरा शान्त हो जाओ । राजा की आज्ञा होते ही थोड़ी देर में अनेक वैद्य आगये परीक्षा करके कहा कि किसी ने कुमार पर विष का प्रयोग किया है । हमको जल्दी बुला लिया वह ठीक किया । अभी उपचार करने से ठीक हो जायँगे । ऐसा कह वैद्यों ने विरेचन वमनादि से विष दूरकर कुमार को होश में लाकर कहा कुमार के गले में जो पुष्प माला है उसी में विष मिला है । वैद्यो के कहने से तुरन्त माली को बुलाकर राजा ने धमकी दे कहा कि बोल इस माला में तुने क्या डाला है ?

माली ने कहा—महाराज इसमें सुगंधित फूल हैं और दूसरा क्या हो सकता है ।

राजा ने कहा—अरे धूर्त यह तो सबको दिखाई देता है। परन्तु इन पुष्पो में तुने क्या डाला है ? जो बात है वह सत्य कहेगा तो छोड़ दूगा नहीं तो अभी मरवा डालूँगा ।

राजा के अभय वचन से माली ने निर्भय हो सत्य हकीकत कहने लागा। महाराज ! आपकी सौतेली माता रत्नमंजरी राणीजी ने आपको मारने के लिए मुझे दो सुवर्ण मोहरों की थैली दी। साथ में एक तालपुट विष की शीशी देकर कहा कि इसमें से दो बूद पुष्प माला में यह माला तू राजा को देना और इससे राजा थोड़ी देर में यमलोक पहुच जायेंगे। मुझे अभागे ने सुवर्ण मोहरों के लोभ से यह भयंकर नीच काम किया है। हे कृपानाथ ! इस तरह जो सच बात थी वह मैंने आपको बतला दी है। अब आप जो ठीक समझे वैसा करें। वास्तव में तो मैं अपराधी हूँ।

माली की बात सुन राजा क्रोधित हो रत्नमंजरी से कहने लगा अरे नीच पापी मूर्ति संसार के क्षणिक पुद्गलिक सुखो में आसक्त हो पापपूर्ण राज्य लक्ष्मी के लोभ से मेरे को मारने वाली राक्षसणी ! तुझे धिक्कार है। जिस समय महाराज मौजूद थे उस समय यदि मैं तेरे पूर्व कृत्य बतला देता तो तेरी क्या दशा होती अरे मायावनी ! मैं तुझे क्या शिक्षा दू ? ऐसा कहते और विचार करते हुए राजा का चित्त विरक्त होने लगा इस लिए पुनः बोला—'माता इस में तेरा दोष नही है। तूने राज्य लक्ष्मी के लोभ से ही यह कृत्य किया है। विद्वान पुरुषों ने कहा है कि राज्य भोक्ताओं को अन्त में नरक मिलता है क्यों कि उसको प्राप्त करने में अनेक प्रकार के पापाचरण करने पड़ते हैं। जैसे २ वह प्राप्त होता वैसे २

उसका मोह बढ़ता जाता है, इससे बार २-पापाचरण करने को मनुष्य प्रेरित होता है और अन्त में दुर्गति में पड़ दीर्घकाल तक असह्य दुःख सहता है। इसलिये अब मुझे दुर्गति के हेतु राज्य लक्ष्मी की जरूरत नहीं है। आज से मैं मेरा हक इस पर से उठा लेता हूँ और महासेन के सुपुर्द करता हूँ। यह कह मेरू-प्रभ राजा महासेन कुमार को राज्य दे अभयघोष आचार्य से चारित्र अंगीकार किया। गुरु के पास रह विनय पूर्वक द्वादशांगी का अध्यन कर मुनि गीतार्थ हुए। पीछे गुरु ने योग्य जान अपने पाट पर स्थापित कर आचार्य पदवी प्रदान की।

एक बार मेरुप्रभाचार्य अनेक मुनियों सहित उग्र विहार करते हुए चित्रकूट नगर के समीप आकर ठहरे। आचार्य महाराज को आए जान नगर निवासियों ने आकर गुरु की वंदना कर देशना सुनने को बैठे। गुरु महाराज मधुर-देशना से उपदेश देने लगे। उस समय एक यक्ष को भी गुरु महाराज की देशना श्रवण कर ज्ञान हुआ। उसने गुरु के सामने देव माया से विविध प्रकार का नृत्य किया। इससे आचार्य की प्रशंसा खूब बढ़ी। नगर में सब जगह यही बात होने लगी। यह-प्रशंसा उस नगर के राजा जितारी के सुनने में आई। वह-सामन्तादिकों के साथ गुरु महाराज की वंदना करने-आया। वंदना कर उचित स्थान पर बैठा तब गुरु ने पुनः देशना शुरू की।

'हे भव्यजनो! यह संसार, समुद्र केवल दुःख से ही परिपूर्ण है। इसमें पड़े हुए प्राणी को-धर्म के सिवाय किसी का

सहारा नही है जन्म जरा और मरणादि दुःखों से छूटकारा पाने के लिए धर्म के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है। यथार्थ तत्व को जाननेवालों ने धर्म दो प्रकार का बताया है एक देश से दूसरा सर्व से देश से गृहस्थ को उचित है। और सर्व से अणगार को। भावपूर्वक धर्म का सेवन करने से मनुष्य अन्त में मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ऐसा समझ धर्म में रुचि रखो।

देशना श्रवण कर जितारी राजा को प्रतिबोध हुआ और श्रावक के बारह व्रत अँगीकार कर अनेक प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की। बाद गुरु महाराज वहाँ से विहार कर ग्राम नगरादि में विचरते वेन्नापुर नगर में पधारे।

वहाँ नगर बाहर के उद्यान में लक्ष्मी देवी के मंदिर के पास ठहरे पीछे देशना आरम्भ की। उनकी देशना से वहाँ की लक्ष्मी देवी को समकित हुआ और गुरु के आगे सुवर्ण की वृष्टि की जिससे आचार्य महाराज की महिमा नगर में फैल गई। गुरु की ख्याति सुन उस नगर का अरिमर्दन राजा परिवार सहित गुरु की वंदना करने आया। उसे प्रति बोध देने गुरु महाराज ने अमृत समान देशना प्रारम्भ की।

अहो भव्यजनो! इस सँसार में दुःख से प्राप्त होने वाले मानव जन्म को प्राप्त कर उसे धर्म रहित प्रमाद से व्यर्थ मत खोओ। पूर्व पूण्यवशात् मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी गुरुमुख

से धर्म श्रवण की प्राप्ति दुर्लभ है; यदि वह भी सुयोग मिल जाय तो धर्म पर श्रद्धा, दृढ़ प्रेम और प्रमाद रहित उसका पालन करना महादुर्लभ है। ऐसा जान प्रमाद छोड़ उसकी साधना में उद्यम करो। इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजा ने सम्यक युक्त श्रावक के व्रत भाव से अंगीकार किये।

इसके बाद मेरुप्रभाचार्य मुनिराज वहाँ से विहार कर ठाणापुर नगर में आये। आचार्य के आगमन की सूचना नगर में हुई कि नगर बाहर महान् विद्वान् अचार्य पधारे है और उनके समान वर्तमान में भूमण्डल में कोई नहीं है। यह सूचना वहाँ के रहने वाले निर्मलध्वज पंडित को भी हुई। वह अहँकार से मन में विचार करने लगा कि यह कौन नया पंडित आया है। मैंने पृथ्वी के समस्त विद्वानों को पराजित किया है और अब यह कौन बीच में बिना हराये बाकी रह गया है? परन्तु मदोन्मत्त हाथी अपनी सुंड को पटकर तब तक ही आवाज करता है जब तक प्रचंड मृगराज की गर्जना नहीं सुनता। उसी प्रकार यह बिचारा पंडित भी मेरे को देखते ही भाग जायगा।

यह सोच वह पंडित राजा के पास आकर कहने लगा महाराज! आज आए हुए आचार्य के साथ भारती देवी के मन्दिर के सामने विद्वानों के साथ मुझसे वाद-विवाद करवाओ और, वहा पधार कर हमारा न्याय करो। यह कह पंडित ने आचार्य को भारती देवी मन्दिर में आकर वाद-विवाद करने को कहा। निश्चित समय पर सब पंडित व राजा

वगैरह भारती देवी के मन्दिर में एकत्र हुए। सूरि महाराज भी अनेक नगर निवासियों के साथ वहाँ पहुँचे। इस लिए राजा वगैरह ने खड़े होकर सूरीश्वर का आदर किया। शाम्यादि अनेक गुणालँकृत सूरीश्वर को अपने मंदिर में आए जान उनके प्रभाव से भारती देवी प्रकट हो गुरु को नमस्कार कर उनको बहुमान पूर्वक सुवर्ण कमल पर बिठाया। इस प्रकार सूरि के प्रभाव को देख पंडित विस्मित हो विचारने लगा कि जिसे सरस्वती भी नमस्कार करती है ऐसे आचार्य के साथ विवाद कर कौन जीत सकेगा? मैंने अपने हाथ से ही अपना पराभव कर लिया है। अब मेरी कीर्ति कैसे कायम रहेगी? यदि मैं इसे जीत लूं तो फिर मेरी कीर्ति का तो पार ही नहीं। इस तरह हृदय शंकित होते हुए भी विवाद आरम्भ किया। निर्मलध्वज के पूछे हुए सब प्रश्नों का उत्तर आचार्य ने दिया परन्तु आचार्य के प्रश्नों का जवाब वह नहीं दे सका। इससे वह पराजित हो बहुत उदास हुआ। पीछे गुरु महाराज ने सबको प्रतिबोध देने के लिए उत्तम प्रकार की देशना दी। इससे सरस्वती देवी व राजा को प्रतिबोध हुआ। राजा ने श्रावक धर्म अँगीकार किया आचार्य ने योग्य उत्तर दे उसकी शंकाओं का समाधान किया। पंडित ने भी मिथ्यात्व छोड़ सम्यग् दर्शन को ग्रहण किया। इस तरह शासन की प्रभावना कर सूरीश्वर वहाँ से विहार कर पाटली पुर नगर में आये। वहाँ का राजा भयंकर ज्वर से पीड़ित था। वह सूरि महाराज के

दर्शन मात्र से व्याधि रहित होगया। इसलिए उसने भावपूर्वक श्रावक धर्म अंगीकार कर जिनशासन की खूब प्रभावना की।

यहाँ से गुरु महाराज ने विहार कर भोगपुर नगर में चातुर्मास किया। यहाँ ऐसा अभिग्रह किया कि इसी नगर में चार माह के अन्दर मद झरता राजा का पट्टहस्ति यदि मोदक वहरावे तो तप का पारणा करना अन्यथा नहीं। घोर तपस्या के बिना कर्मों का नाश नहीं होता, यही समझकर उपरोक्त घोर अभिग्रह किया।

अभिग्रह युक्त तपस्या करते दो माह व्यतीत हो गए फिर भी अभिग्रह पूर्ण नही हुआ। फिर भी आचार्य महाराज जरा भी विचलित नही हुए। पीछे अंतराय कर्म के क्षयोपशम से एक दिन राजा का पट्टहस्ति आलान स्तम्भ उखाड़ अपने लिए रखा हुआ मोदक का थाल सून्ड से उठा नगर में मन्दोन्मत्त हो फिरने लगा। फिरते २ वह हाथी अभिग्रह धारण करने वाले सूरि महाराज के समीप आकर खड़ा रहा और थाल के मोदक भक्ति भाव से वहराने लगा। सूरीश्वर ने अपना अभिग्रह यथार्थ रीति से पूर्ण होता जान मोदक ग्रहण किया। उस समय देवताओं ने पाच दिव्य प्रकट किए और रत्नो की वृष्टि की। इससे सारे नगर में आनन्दोत्सव मनाया गया और बहुत से भव्य जीवों को बोध हुआ। इससे शासन की अतिशय उन्नति हुई।

वहाँ से विहार कर सूरीश्वर मथुरा नगर में आये। वहाँ का राजा तथा प्रजा सब बौद्धधर्मानुयायी होने से नगर में गये

हुए साधुओं को कहीं भी गोचरी उपलब्ध नहीं हुई और साथ में सब उनकी निभ्रछना करने लगे। यह देख आचार्य महाराज ने विद्या मन्त्र के प्रभाव से निभ्रछना करने वाले बौद्धो को स्तंभित कर दिए। यह बात वहीं के राजा हेमध्वज को मालूम हुई तो उसने जैनाचार्य को मारने के लिए सेना भेजी। सेना को आती देख सूरि – भक्त देवताओं ने समस्त सेना को चित्र के समान स्तम्भित कर दी और आकाशवाणी से कहा कि जो तुम सब को जीवित रहने की इच्छा हो तो आचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए अपराध की क्षमा मांग जिनोक्त धर्म को अङ्गीकार करो।

यह आकाशवाणी सुन सब विस्मित हुए और गुरु के पास आकर नमस्कार किया और श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। पीछे सब ने भक्ति पूर्वक गोचरी के लिए साधुओं को निमन्त्रित किया। फिर। सूरि जी की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे प्रभु ! आपने हमको संसार समुद्र में डूबते हुए को बचाकर मिथ्यातत्व छुड़ाकर सम्यग् धर्म प्राप्त कराया है इसलिए हम आपके अत्यंत ऋणी है। इस तरह उस नगरी के राजा आदि नगर जनों को शुद्ध धर्म में आरूढ़ कर शासन की उन्नति कर आचार्य वहाँ से नागपुर नगर आये।

गुरु महाराज को आए जान सब नगर निवासी तथा राजा परिवार सहित वन्दना करने गये। राजादि नगरजनों को आए जान सूरीश्वर ने संसार रूप ताप से तृप्त हुए प्राणियों को मेघ की वृष्टि समान देशना आरम्भ की। गुरू की देशना

से राजा को प्रतिबोध हुआ और भाव पूर्वक सम्यग् धर्म अङ्गीकार किया। उस समय उस राजा के दुश्मन म्लेच्छ राजा की सेना चढ़ आई। इस तरह अचानक अगणित म्लेच्छों की सेना को आई जान राजा घबरा कर गुरु से कहने लगा—कृपासिन्धु! अब इस शत्रु से मेरी प्रजा की रक्षा किस प्रकार होगी? यदि मुझे पहले खबर हो जाती तो मैं लड़ाई की तैयारी करता परन्तु अब क्या हो सकता है।

गुरु ने कहा—राजन्! धर्म के प्रभाव से उपद्रव का नाश होगा। तू निश्चित हो तेरे महल में जा और धर्माराधन कर। यह कह राजा को धीरज दे नगर में भेजा। थोड़ी देर में राजा के दूत ने आकर कहा कि महाराज म्लेच्छ सेना के अधिपति का अभी मृत्यु हो गई है और सारी शत्रु सेना में महा उपद्रव हो रहा है और सब अपनी रक्षा करने का भाग रहे हैं।

-यह खुश खबरी सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और गुरू महाराज के पास आकर पुनः भावपूर्वक वंदना की। नगर में जगह २ आनन्दोत्सव कर शासन की खूब प्रभावना की।

मेरू प्रभाचार्य वहां से विहार कर पुन भोगपुर नगर में पधारे। गुरु का आगमन सुन नगर निवासी उत्साह पूर्वक गुरु को वन्दन करने गए और देशना श्रवण करने को बैठे। सूरि महाराज ने अनेक भवोपार्जित पापकर्मों का नाश करने वाली देशना दी। उस समय सौ धर्म देवलोकाधिपति वहाँ आकर सूरि के चरण कमलों में नमस्कार कर स्तुति करने लगा—

हे करूणासिन्धु ! हे गुणाकर ! हे परमोपकारी सूरिश्वर ! आपने जिनोक्त शासन की अत्यन्त उन्नति कर उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर त्रिलोक पूज्य श्री जिननाम कर्म निकाचित बंध किया है। इस लिए आगामी काल में अनेक सुरासुर आपके पद लोंमक में नमस्कार कर अपने पापों का क्षय करेंगे। मैं भी कृतार्थ हुआ जिससे आपके पवित्र दर्शन कर सका हूँ। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

सूरि महाराज वहाँ से विहार कर समेत शिखर पर पधारे। वहाँ अनशन कर ब्रह्मदेवलोक में महान् समृद्धिशाली देव हुए। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर आनन्दमय मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे।

समाप्तम्

श्री खरतरगच्छीय प्रथम दादा श्रीजिनदत्त सुरीश्वर जी की स्तुति

दातार मेरे प्यारे, दादा गुरु हैं दातार।
दत्त सुरीश्वर दादा गुरु है, कल्पतरू के अवतार। अवतार मेरे प्यारे ॥दादा॥१॥ निपूतियों को सुपूत देते, निर्धन को भंण्डार। ॥ भण्डार मेरे प्यारे ॥ दादा ॥२॥ रोगी कुरूप के रोग मिटाते, जल्दो से रूप सुधार। सुधार मेरे प्यारे। दादा ॥३॥ निर्बुद्धियों में शुद्धि प्रयोग ते करते सुबद्धि प्रचार। प्रचार मेरे प्यारे ॥दादा ॥४॥ सेवे सुगुरु भवि सुरगग नायक "हरि" करे जयकार। जय कार मेरे प्यारे ॥ दादा ॥५॥

श्री खरतर गच्छीय प्रसिद्ध योगीराज श्री आनन्दघनजी म_ रचित पद

या पुद्गल का क्या विशवासा, है सपने का वासारे ॥
चमत्कार बिजली दे जैसा, पानी बीच पतासा ।
या देही का गर्व न करना, जंगल होगा वासा ॥१॥
झूठा तनधन झूठा जोबन, झूठा है घर वासा ।
"आनन्दघन" कहे सब ही झूठा, साचा शिवपुर वासा ॥२॥

श्री खरतरगच्छीय प्रसिद्ध योगीराज श्री चिदानन्द जी म_ रचित पद

ज्ञान कला घट भासी जाकू ॥ज्ञान०॥
तन धन नेह नहीं रहयो ताकू, छिन में भयो उदासी ॥१॥
हूँ अविनाशी भाव जगत के, निश्चय सकल विनाशी ।
एहवी धार धारण गुरूगम, अनुभव मारग पासी ॥२॥
मैं मेरा ए मोह जनित भ्रम, ऐसी बुद्धि प्रकासी ।
ते निःसग पग मोह शीशदें, निश्चय शिवपुर जासी ॥३॥
सुमता भई सुखी इम सुनके, कुमता भई उदासी ।
"चिदानन्द" आनद लह्यो इम, तोर करम की पासी ॥४॥

